

प्राचीन
कविता
के
समूह पर
आलोचना



अनामिका कविता के समूह पर

प्रगतिशील कविता के मील-पत्थर

सम्पादक

डॉ० रणजीत

लोकभारती प्रकाशन

१५ ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

7359-लोकभारती प्रकाशन

कापीराइट
डॉ० रणजीत

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित

•
कापीराइट
डॉ० रणजीत

•
संस्करण : १९८५

•
लोकभारती प्रेस
१८, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा मुद्रित

पुस्तकालय संस्करण : ४०.००
विद्यार्थी संस्करण : २०.००

धूमिल
दुष्यन्त कुमार
और भारतभूषण अग्रवाल
को
जो इस संकलन के छपते-छपते हमारा साथ छोड़ गये

चन्द्र सतरें

प्रस्तुत संकलन की रूपरेखा मेरे दिल-दिमाग में कई साल पहले उन दिनों उभरी और एक अर्से तक घुमड़ती रही, जब मैं 'हिन्दी की प्रगतिशील कविता' पर शोध कर रहा था। हिन्दी साहित्येतिहास में प्रगतिशील कविता की उपेक्षा और समग्र रूप से उसके सम्यक् मूल्याङ्कन के प्रयासों के एकान्त अभाव ने ही मुझे उस पर शोध की प्रेरणा दी थी। इस शोध के क्रम में प्रगतिशील कविता का सारा वैभव मेरे सामने आया और यह तथ्य मुझे बड़ा क्लेशप्रद लगा कि हिन्दी में इस वैभव को रूपायित करने वाला प्रगतिशील कविता का एक भी प्रतिनिधि संकलन नहीं है। वैसे भी विभिन्न काव्यधाराओं, शैलियों और विषयों से संबन्धित प्रतिनिधि संकलनों की हिन्दी में बहुत कमी है।

इस संकलन में हिन्दी के पचास कवियों की एक सौ म्यारह चुनी हुई कविताएँ संकलित हैं। इस आकार का यह संकलन हिन्दी के प्रगतिशील काव्य की पूरी समृद्धि का दिग्दर्शन तो नहीं करा सकता और न उसकी संवेदनशीलता के विस्तार की ही सम्पूर्ण रूपरेखा प्रस्तुत कर सकता है, पर मेरा विश्वास है कि उसके सर्वाधिक द्युतिमान मणि-मुक्ताओं को अवश्य पाठकों के सामने रख सकेगा। मेरा यह प्रयत्न रहा है कि इस छोटे आकार में भी पिछले चासीस-पचास वर्षों के प्रगतिशील काव्यसृजन की अधिकांश उपलब्धियों को संचित किया जा सके।

लगभग सभी संकलित कवियों और कविताओं पर अपनी पुस्तक 'हिन्दी के प्रगतिशील कवि' में विस्तार से लिख चुका हूँ, इसीलिए उसे संक्षेप में भी दुहराना यहाँ व्यर्थ ही होगा।

संकलन की पांडुलिपि के निर्माण में वनस्थली विद्यापीठ (राजस्थान) में मेरी बी० ए० की छात्राओं—नेमलता मुणोत, ऊषा राय और मुकुल मल्लिक—के अतिरिक्त नेहरू महाविद्यालय के स्नातकोत्तर छात्र-छात्राओं तथा शोधार्थियों—श्रीमती नंदा सिंह, धर्मेन्द्र नलिन, सुमनलता तिवारी तथा कृष्णचन्द्र गुप्त—ने मदद की; इन सबका मैं कृतज्ञ हूँ।

मेरा विश्वास है कि यह संकलन हिन्दी के औसत समीक्षकों और अध्यापकों की प्रगतिशील कविता को नारेबाजी का पर्याय समझने की भ्रांति को दूर करने के साथ ही साथ अपने पाठकों को हिन्दी की प्रगतिशील कविता की विस्तृत संवेदनशीलता और उसके उदात्त मानववादी स्वर से परिचित करा सकेगा।

७ नवम्बर ५४

—रणजीत

अनुक्रम

हिन्दी की प्रगतिशील कविता का उद्भव और विकास	...	११-२४
सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'		
बादल राग	...	१६
भिक्षुक	...	२२
तोड़ती पत्थर	...	२३
सुमित्रानन्दन पंत		
द्रुत झरो	...	२५
वह बुद्धा	...	२६
वे आँखें	...	२७
बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'		
जूठे पत्ते	...	२६
विद्रोही	...	३०
रामधारी सिंह 'बिनकर'		
विपथगा	...	३३
दिल्ली और मास्को	...	३४
हरिवंशराय 'बच्चन'		
सहरों का निमन्त्रण	३६
निर्माण	४०
छलयुग का कोरस	...	४१
नागार्जुन		
अकाल और उसके बाद	४३
पीपल के पीले पत्ते	...	४३
प्रत्यावर्तन	४५
मंत्र	...	४७

केदारनाथ अग्रवाल	५०
एक बच्चे के जन्म पर	५०
नागार्जुन के बाँदा आने पर	५४
कुछ छोटी कविताएँ	५६
ओ मेरे संसार	५६
त्रिलोचन	५७
कस्मै देवाय	५८
धूप	५८
शब्द	६०
शंकर शैलेन्द्र	६१
जीत में यकीन कर	६१
शील	६२
भाई का पत्र	६२
शिवमंगल सिंह 'सुमन'	६५
मैं तुम्हें धूला नहीं हूँ	६५
चली जा रही है बड़ी लाल सेना	६७
साँसों का हिसाब	६८
'हीरज'	७३
साँसों के मुसाफिर के नाम	७३
नील की बेटी के नाम	७४
अब युद्ध नहीं होगा	७८
वीरेन्द्र मिश्र	८१
जिन्दगी गा रहा हूँ	८१
मेरा देश	८३
रामाबतार त्यागी	८७
अपनी कलम नहीं बेचूँगा	८७
सारी रात जागना होगा	८८

गंगाराम 'पथिक'	९०
शायद कोई तूफान	९०
गजानन माधव मुक्तिबोध	९१
मुझे कदम कदम पर	९३
पता नहीं....	९३
एक अरूप शून्य के प्रति	९७
शमशेर बहादुर सिंह	१०२
य' शाम है	१०३
अस्न का राग	१०८
नजरूल के लिए	१०८
विजयदेव नारायण साही	११८
हम सभी बेचकर आये हैं अपने सपने	११८
छापामार दस्ते	१२०
सवानो प्रसाद मिश्र	१२३
सतपुड़ा के जंगल	१२३
गीत-फरोश	१२५
नया त्यौहार	१२७
भारत भूषण अग्रवाल	१३०
हम नहीं हैं द्वीप	१३२
मूर्ति तो हटो, परन्तु...	१३२
गिरिजाकुमार माथुर	१३६
तेँतीसवों वर्ष गाँठ	१३६
हृष्य देश	१३८
धर्मवीर भारती	१४५
निराला के प्रति	१५०
अनुशासन पर्व	१५०
नरेश मेहता	१५३
अनुनय	१५३

समय-देवता	१५४
उपेन्द्रनाथ 'अशक'	१६६
लकड़बाघे	१६६
सत्यान्वेषी	१७१
बीरेन्द्र कुमार जैन	१७४
सावधान, गलतफहमी में न रह जाना	१७४
रामदरश मिश्र	१७७
होने और न होने के बीच	१७७
सांस्कृतिक एकता	१७६
दुष्यन्त कुमार	१८१
एक आशीर्वाद	१८१
राह खोजेंगे	१८२
गजल	१८२
केदारनाथ सिंह	१८४
घानों का गीत	१८५
निराकार की पुकार	१८७
बढ़ई और चिड़िया	१८७
नन्द चतुर्वेदी	१८६
दरवाजा खोलने के सिवाय	१८९
इस इलाके में जंग छिड़ी है	१८९
सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	१८३
भेड़िया	१८४
भाग	१८४
राजीव सक्सेना	१८६
अस्तित्व का गीत	२०६
आत्म-निर्वासन	२०६
शलभ श्रीराम सिंह	२१२
जिन्दाबाद इन्कलाब	२१२

हर बरस की तरह	२१४
श्रीराम-दोपहर	२१६
श्यामसुन्दर घोष	२१७
एक बीज का स्वगत-कथन	२१७
धूमिल	२२४
बीस साल बाद	२२५
अकाल-दर्शन	२२६
रोटी और संसद	२२६
विजय बहादुर सिंह	२३०
मेरे देश को गालियाँ मत दो	२३०
रणजीत	२३४
पृष्ठभूमि	२३५
प्रतिश्रुति का गीत	२३६
क्रान्ति : एक भारी उद्योग	२३६
जुगसंधि तायल	२४२
लावा	२४४
युद्ध के बाद शरद	२४६
मदन डागा	२४६
कुर्सी प्रधान देश	२४६
कृष्णमुरारी पहारिया	२४६
पथावरोधी शिला	२५०
छाया	२५१
केन-गीत	२५१
मृत्युंजय उपाध्याय	२५२
व्यवस्था	२५२
लीलाधर जगूड़ी	२५३
बलदेव छटिक	२५३

खन्डकार्त देवताले			
पेड़	२६७
थोड़े से बच्चे और बाकी बच्चे	२६८
दूधनाथ सिंह			
शेख मुजीबुर्रहमान	२७३
कुमार विकल			
यह सब कैसे होता है	२७५
एक सामरिक चुप्पी	२७८
बेणु गोपाल			
जंगल-गाथा	२८३
हमारी ही बात	२८५
सुनो हिटलर	२८६
रमेश रंजक			
नहिं चइये	२८७
दमन की चक्की	२८८
सोमदत्त			
राजनेता का अधसच सपना	३००
हमें ब्रह्माण्ड होना चाहिए	३०१
हरिजन हत्याकांड	३०३
उदय प्रकाश			
इनकलाब	३०५
मालिक, आप नाहक नाराज हैं...	३०८
राजेश जोशी			
पहाड़	३१२
सलीम और मैं और उनसठ का साल	३१४
ज्ञानेन्द्र पति			
मित्र के कमरे में	३२०
चमगादड़	३२२

हिन्दी की प्रगतिशील कविता का उद्भव और विकास

इससे पहले कि हम हिन्दी की प्रगतिशील काव्यधारा के जन्म और विकास पर दृष्टि डालें यह जान लेना उचित होगा कि वास्तव में प्रगतिशील कविता है क्या ! क्या यह प्रगतिवादी कविता का ही दूसरा नाम है ? या ये दोनों अलग-अलग वस्तुएँ हैं ? इस विषय पर हिन्दी के लगभग सभी समीक्षक एकमत नजर आते हैं कि प्रगतिवाद हिन्दी में मार्क्सवादी विचारधारा की साहित्यिक अभिव्यक्ति का नाम है, पर 'प्रगतिवाद' और 'प्रगतिशील साहित्य' के सम्बन्ध में स्वयं प्रगतिशील समीक्षकों में भी पर्याप्त मतभेद हैं ।

श्री शिवदान सिंह चौहान 'प्रगतिवाद' शब्द को 'मार्क्सवादी सौंदर्य सिद्धांत' का पर्याय मानते हैं और इसलिए इस शब्द का प्रयोग साहित्य की किसी धारा के लिए करना उचित नहीं समझते । वे कहते हैं : "प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य में भेद है, यह स्पष्ट होना ही चाहिए, अन्यथा गलत शब्दों का प्रचलन जारी रहेगा, आप कहेंगे कुछ, लोग समझेंगे कुछ । प्रगतिशील कविता का जब प्रश्न उठता है तो उसके पीछे किसी विशेष दार्शनिक वाद की मान्यता का आग्रह नहीं किया जा सकता । एक प्रगतिशील कवि गांधीवादी भी हो सकता है, मार्क्सवादी भी और द्वैत-अद्वैतवादी भी । जो साहित्य पाठक को स्वस्थ प्रेरणा देता है, मनोवृत्तियों को और उभार कर व्यक्ति को असामाजिक और मानवद्रोही नहीं बनाता, जीवन संग्राम में आगे बढ़ने का बल और साहस देता है और मनुष्य की चेतना को गहरा, व्यापक और मानवीय बनाता है, हिंसा और द्वेष को नहीं बढ़ाता और जो वास्तव में जीवन का मार्मिक और सारगर्भित स्थितियों का चित्रण करता है, अर्थात् जिसमें कला सोष्टव और गहराई है, वह सब प्रगतिशील ही तो है ।" (साहित्य की समस्याएँ, पृष्ठ ६२)

डॉ० रामविलास शर्मा प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य में कोई अन्तर नहीं करते, इन दोनों शब्दों का पर्यायों की तरह प्रयोग करते हैं और 'प्रगति-

बाद' को 'मार्क्सवादी सौंदर्य शास्त्रीय दृष्टि' कहने के लिए चौहान जी का मजाक उड़ाते हैं। डॉ० नामवर सिंह भी न केवल इन दोनों को अभिन्न मानते हैं, इनमें भेद करने वाली को प्रगतिशील साहित्य का प्रच्छन्न विरोधी भी घोषित कर देते हैं। 'प्रगतिवाद' शब्द को वे रचनात्मक साहित्य और आलोचनात्मक मानदंड दोनों के लिए प्रयुक्त करते हैं और इसके पर्याय रूप में ही 'प्रगतिशील साहित्य' शब्द का भी प्रयोग करते हैं। डॉ० शिवकुमार मिश्र का दृष्टिकोण भी लगभग यही है। डॉ० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय 'प्रगतिवाद' शब्द को 'मार्क्सवादी सौंदर्य शास्त्रीय दृष्टि' तक सीमित न रखकर इस दृष्टिकोण से लिखे हुए साहित्य को भी उसमें सम्मिलित कर लेते हैं और 'प्रगतिशील' शब्द को लगभग वही व्यापक अर्थ देते हैं, जो चौहान जी ने दिया है।

इस संबंध में मेरी अपनी धारणा चौहान जी तथा उपाध्याय जी से मिलती जुलती है। मार्क्सवादी सौंदर्य चिन्तन या समीक्षादृष्टि को 'प्रगतिवाद' मार्क्सवादी जीवन दर्शन से अनुप्राणित साहित्य को 'प्रगतिवादी साहित्य' और इस साहित्य सहित उस समस्त साहित्य को जो मूलतः मानववादी और अप्रगामी है, चाहे उसके स्रष्टाओं का दार्शनिक दृष्टिकोण कुछ भी हो, 'प्रगतिशील साहित्य' कहना चाहिए।

हिंदी में प्रगतिशील कविता का आरम्भ कब से माना जाय, इस संबंध में भी प्रगतिशील समीक्षकों में मतभेद है। डॉ० नामवर सिंह इसे १९३० से मानते हैं। डॉ० शिवकुमार मिश्र १९३६ से। प्रगतिशील काव्य सृजन के प्रारंभिक इतिवृत्त से सम्बद्ध ध्यान देने योग्य तथ्य इस प्रकार हैं : आचार्य गयाप्रसाद शुक्ल सनेही ('त्रिशूल' जी) की 'साम्यवाद' कविता १९२१ में लिखी गयी। निराला जी का 'बादल राग' १९२३ में, 'भिक्षुक' १९२४ से २७ के बीच और 'तोड़ती पत्थर' १९३७ में लिखी गयी। पन्त जी की युगान्त में संकलित 'द्रुत-झरो', 'मानव', 'बाँसों का झुरमुट' आदि कविताएँ १९३४ से १९३६ के बीच में लिखी गयीं। पल्लव में संकलित उनकी लम्बी कविता 'परिवर्तन' १९२४ में लिखी गयी। श्री रामधारी सिंह दिनकर की 'रेणुका' में संकलित कविता 'कस्मे देवाय' १९३१ में तथा 'तांडव' और 'कविता की पुकार' १९३३ में लिखी गयीं। श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन की 'विप्लव गायन' १९२५ में, 'अनलगाव'

मार्च ३६ में और 'जूटे पत्ते' जुलाई ३७ में लिखी गयी। श्री आरसी प्रसाद सिंह की 'रक्तपर्व', जिसमें स्पष्ट शब्दों में साम्यवाद का जयघोष किया गया है, जनवरी १९३४ में लिखी गयी। श्री रामेश्वर कृष्ण के ब्रजभाषा में लिखे हुए सात सौ प्रगतिशील दोहों का संकलन 'कृष्ण सतसई' १९३४ में लाहौर से प्रकाशित हुआ था, पर उनकी खड़ीबोली की कविताएँ काफी बाद की हैं।

भिन्न-भिन्न समीक्षकों ने हिन्दी के प्रथम प्रगतिशील कवि होने का गौरव भी अलग-अलग रचनाकारों को दिया है। डॉ० नगेन्द्र सुमित्रानन्दन पन्त को ही हिन्दी में प्रगतिवाद का प्रथम कवि मानते हैं। पर नन्ददुलारे जी यह प्रवर्तक पद अंचल को देना चाहते हैं। डॉ० प्रकाशचन्द्र गुप्त श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' को प्रथम प्रगतिवादी कवि और 'हुंकार' को प्रथम प्रगतिवादी काव्यकृति मानते हैं। डॉ० शिवकुमार मिश्र श्री गयाप्रसाद शुक्ल सनेही 'त्रिशूल' जी को हिन्दी का प्रथम प्रगतिशील कवि मानते हैं और ब्रजकिशोर चतुर्वेदी श्री रामेश्वर कृष्ण को। श्री ललित मोहन अवस्थी के अनुसार हिन्दी में प्रगतिशील आंदोलन के प्रारम्भ कर्ता साम्यवादी नहीं, गैर साम्यवादी—ऐसे गैर-साम्यवादी जिनमें से कई आगे चल कर साम्यवाद-विरोधी तक हो गये थे। इनमें गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और भगवती चरण वर्मा प्रमुख हैं।

इन सब तथ्यों से दो बातें स्पष्ट होती हैं। एक तो यह कि प्रगतिशील कविता के प्रथम स्रष्टा तो यद्यपि त्रिशूल जी ही थे तथापि हिन्दी के पहले प्रगतिशील कवि होने का गौरव पन्त जी को ही दिया जाना चाहिए। क्योंकि पन्त जी ही एक ऐसे कवि थे, जिन्होंने हिन्दी में प्रगतिशील काव्य-सृजन की एक वास्तविक परम्परा का प्रवर्तन किया। फिर वे अपने समसामयिक प्रगतिशील कवियों की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित रूप से प्रगतिशील चिन्तन से प्रभावित और उसकी मूल सृजनात्मक चेतना से अधिक सम्पृक्त कवि भी थे।

और दूसरी यह कि यद्यपि छिटपुट प्रगतिशील कविताओं की रचना १९३० से भी काफी पहले से होने लगी थी, तथापि एक सशक्त धारा के रूप में प्रगतिशील कविता की सत्ता १९३६ से ही अनुभव की जाने लगी। हिन्दी में ही नहीं अधिकांश भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी प्रगतिशील आन्दोलन का वास्त-

विक और विधिवत प्रारम्भ १८३६ से ही होता है। हिन्दी में यही वह वर्ष है, जिसमें स्वयं छायावाद के एक प्रमुख स्तम्भ ने युगान्त लिखकर, छायावाद युग के अन्त और नये युग के प्रारम्भ की विविधत घोषणा की। हिन्दी कविता और साहित्य में प्रगतिशील आन्दोलन का प्रारम्भ १८३६ से मानने के कई और भी कारण हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण यह है कि 'अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' का निर्माण इसी वर्ष हुआ और उसका पहला अधिवेशन भी, जो सामयिक साहित्य-संसार की एक महत्वपूर्ण घटना थी, इसी वर्ष सम्पन्न हुआ।

यह तो हुई हिन्दी कविता में प्रगतिशील आन्दोलन की शुरुआत की बात। अब उसके अब तक के विकास पर एक नजर डाली जाय। इस विकास के सम्यक् अध्ययन के लिए हम उसे पाँच निश्चित दौरों या युगों में विभाजित कर सकते हैं : ये दौर वास्तव में हिन्दी की प्रगतिशील कविता के विकास की पाँच अवस्थाएँ हैं, जिनमें से होकर वह गुजरी है :

पहला दौर (१८३६ से १८७७ तक)

दूसरा दौर (१८७७ से १८५१ तक)

तीसरा दौर (१८५१ से १८६२ तक)

चौथा दौर (१८६२ से १८७४ तक), और

पाँचवाँ दौर (१८७४ से १८८४ तक)

प्रगतिशील कविता का पहला दौर कविता में प्रगतिशील आन्दोलन के प्रारम्भ से लेकर भारतीय जनता के औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्ति तक चलता है। यह वह युग है, जिसमें भारतीय जनता प्रमुखतः अपने तात्कालिक उद्देश्य—राष्ट्रीय स्वाधीनता—के लिए संघर्ष कर रही थी। इसलिए इस युग की प्रगतिशील कविता का मूलस्वर राष्ट्रीय और साम्राज्य-विरोधी है। बल्कि वस्तु-स्थिति यह है कि इस युग में हिन्दी कविता की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा और प्रगतिशील काव्यधारा एक दूसरी के इतनी निकट आ गयीं कि कहीं-कहीं उनमें अन्तर करना कठिन हो गया। राष्ट्रीय रुझान के प्रगतिशील कवि, दिनकर और नवीन, मूलतः इसी युग के कवि हैं।

यह युग प्रगतिशील कविता का पहला युग था, इसलिए उसकी कविता में ऐसी बहुत सी प्रवृत्तियाँ भी विद्यमान रहीं, जिनका प्रगतिशील आन्दोलन से कोई

अनिवार्य संबंध नहीं है और जिन्हें बाद की प्रगतिशील कविता ने स्वीकार नहीं किया। ऐसी प्रवृत्तियों में विध्वंसवाद और अराजकतावाद, कुत्सित यथार्थवाद और धीनवाद प्रमुख हैं। इस युग के अधिकांश प्रगतिशील कवियों ने एक ओर तो क्रान्ति की 'विपथगा' और 'दिग्म्बरि' के रूप में कल्पना की तथा भविष्य की किसी सृजनात्मक धारणा के बिना ही 'उथल-पुथल' मचाने की कोशिश की, तो दूसरी ओर फायड के प्रभाव में जन-स्वाधीनता के साथ-साथ कभी-कभार यौन-स्वाधीनता की धारणा को भी वाणी दी। चिन्तन की दृष्टि से इस युग की अधिकांश कविता—पन्त जी की कविताओं को छोड़ कर—अधिक परिपक्व नहीं दिखाई देती। हाँ, विविधता अवश्य उसमें पर्याप्त है।

इस युग के द्वितीय चरण, दूसरे महायुद्ध काल की प्रगतिशील कविताओं में फासिस्ट-विरोध मुखर हुआ है। यही से प्रगतिशील कविता में अन्तर्राष्ट्रीयता बोध की परंपरा प्रारंभ होती है, जो आगे के दौरों में निरन्तर विकसित होती गयी।

इस दौर में प्रकाशित प्रगतिशील कविता के प्रमुख संकलनों में निराला के कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला और नये पत्ते; पन्त के युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या; दिनकर के रेणुका, हुंकार, सामधेनी और कुक्षेत्र; सुमन के हिल्लोल, जीवन के गान और प्रलय सृजन; अंचल के किरण-बेला और करील तथा नरेन्द्र शर्मा के लाल निशान, प्रभातफेरी और हुंसमाला का उल्लेख किया जा सकता है।

हिन्दी की प्रगतिशील कविता का दूसरा दौर मोटे तौर पर औपनिवेशिक स्वराज्य से भारतीय गणराज्य की घोषणा तक का दौर है। साम्यवादी दल की दृष्टि से, जिसकी नीतियों का प्रगतिशील आन्दोलन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा, देखा जाय तो यह वह दौर है जो उसके द्वारा ५१ में नये कार्यक्रम की स्वीकृति के साथ समाप्त होता है। यह वह युग है जिसमें नयी बनी राष्ट्रीय सरकार ने, अंग्रेज-अमेरिकी पूँजी पर बहुत अधिक आश्रित होने के कारण, भारत में जन-वादी आन्दोलन की, जो औपनिवेशिक स्वराज्य की अपनी उपलब्धि से ही सन्तुष्ट नहीं था, भीषण दमन से कुचलने के प्रयत्न किये और उस अधिक कटु और क्रान्तिकारी ही नहीं, कट्टर और संकीर्ण भी बना दिया। तेलंगाना का

किसान-विद्रोह इसी युग की एक प्रमुख घटना है। कांग्रेसी शासन के इन आरंभिक वर्षों में सामान्य रूप से जन-आन्दोलन और विशेष रूप से किसान-मजदूर आन्दोलन का दमन अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया।

प्रगतिशील आन्दोलन इन परिस्थितियों से अप्रभावित नहीं रह सकता था। राष्ट्रीय स्वाधीनता की प्राप्ति का जनता के अन्य वर्गों की तरह प्रगतिशील लेखकों ने स्वागत किया और आशा की कि स्वाधीनता और सांस्कृतिक निर्माण का एक नया युग प्रारंभ होगा। पर जब नयी सरकार ने जनता पर अंधाधुंध दमन करना और स्पष्ट पूंजीवादी नीतियों पर चलना शुरू किया तो प्रगतिशील लेखकों में उसके प्रति कटुता की भावनाएँ बढ़ने लगीं। शीघ्र ही सरकार ने जन आन्दोलनों के साथ-साथ जनवादी सांस्कृतिक आन्दोलनों पर भी हमला बोल दिया। जन नाट्य संघ और प्रगतिशील लेखक संघ भी इस दमन की लपेट में आ गये। सभी प्रान्तों से इन संघों के सदस्य कलाकारों और लेखकों की बिना वारंट गिरफ्तारियों और बिना मुकदमा नजरबंदियों की खबरें आने लगीं।

इन सब परिस्थितियों के परिणाम-स्वरूप इस युग की प्रगतिशील कविता में जहाँ एक सघा हुआ क्रान्तिकारी स्वर, एक हृदय और सुस्पष्टता मिलती है, वहाँ कविता को राजनीति और राजनीतिक संघर्षों तक सीमित करने की प्रवृत्ति तथा एक प्रकार की सैद्धान्तिक कट्टरता और कलाहीन सिद्धान्त-कथन की प्रवृत्ति भी उसमें मुखर है। इस युग की कविता को 'प्रगतिवादी' कविता कहा जा सकता है।

तत्कालीन प्रगतिशील कविता और उसकी प्रशंसक प्रगतिशील समीक्षा की इस चिन्ताजनक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए श्री शिवदान सिंह चौहान ने लिखा था : "किसी गहरी अनुभूति की कलात्मक अभिव्यंजना के बिना भी कविता में यदि 'सही' मानवतावादी दृष्टिकोण या सही वामपक्षीय विचार पख-बद्ध हैं, तो उन हल्की तुकबन्दियों को भी 'नये युग' की कविता घोषित करने में हमारे कतिपय आलोचक संकोच नहीं करते और समझते हैं कि कोरे साधारणीकृत विचारों, सिद्धान्तों और वक्तव्यों में 'आगे बढ़ते जाने' या 'लड़ते जाने' के गर्वोक्तिपूर्ण उद्गारों और 'अंधेरा-सबेरा' की टकसाली चित्र-कल्पनाओं को

यांत्रिक ढंग से जोड़ कर तुकों की बंदिश बाँध देने या मुक्त छंद के रूप में लिख देने भर से ही कविता में 'प्रगति तत्त्व' पैदा हो जाता है।" वास्तव में इस युग की प्रगतिशील कविता का एक बड़ा हिस्सा प्रगतिशील चेतना का उन्मेष न रह कर, साम्यवादी दल की तत्कालीन नीतियों की उद्घोषणाएँ मात्र रह गया था।

इस युग की कविता में केदार की युग की गंगा, वीलेन्द्र की न्यौता और चुनौती, शील की एक पग और उदय पथ की अधिकांश कविताएँ और नागा-जुन तथा रामविलास की अधिकांश सामयिक व्यंग-कविताएँ आ जाती हैं।

कुल मिला कर इस दूसरे दौर की प्रगतिशील कविता में सामाजिक यथार्थ के कुछ प्रभावशाली चित्र खींचे गये और कुछ तिलमिला देने वाले सामाजिक और राजनीतिक व्यंग लिखे गये। इस युग की कविता में एक सीधी चोट है, जो कई बार कलाविहीन वक्तव्यों में बदल जाती है।

हिन्दी की प्रगतिशील कविता का तीसरा दौर उस समय से शुरू होता है, जब राष्ट्रीय सरकार की घरेलू और विदेश नीति में थोड़ा परिवर्तन आता है और वह अपेक्षाकृत उदार घरेलू नीति तथा मोटे तौर पर साम्राज्यवाद-विरोधी विदेश नीति अपनाती है। १९५२ में बालिग मताधिकार के आधार पर पहला आम चुनाव हुआ। धीरे-धीरे नेहरू सरकार ने सोवियत संघ और चीन के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाये और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए वह अधिकाधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने लगी। परिणाम स्वरूप अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ ने अपने पाँचवें अधिवेशन में, जो १९५३ में दिल्ली में हुआ, प्रगतिशील आन्दोलन को एक अधिक व्यापक और उदार स्वरूप देने का प्रयत्न किया। इन्हीं सब परिस्थितियों में हिन्दी की प्रगतिशील कविता ने एक नयी और उदार मानववादी अवस्था में प्रवेश किया। क्रान्ति की भावनाओं के साथ-साथ अफ़ेशियाई एकता की भावना, विश्वशान्ति की उत्कट आकांक्षा और एक संवेदनशील उदार मानववाद के स्वर उसमें मुखर होने लगे। साथ ही उसकी शिल्पचेतना भी विकसित हुई। ५१ में प्रकाशित दूसरा सप्तक में संकलित शमशेर और नरेश मेहता की कविताएँ इस नयी प्रगतिशील कविता का पहला सशक्त प्रतिनिधित्व करती हैं।

इस युग की प्रगतिशील कविता स्वच्छन्दतावादी कविता और नयी कविता के कुछ महत्वपूर्ण तत्त्वों को अपने भीतर समेट कर आगे बढ़ी। इसलिए न तो संवेदनशीलता और न शिल्प-सजगता के अभाव की शिकायत उससे की जा सकती है। कविता में राजनीति को सर्वाधिक महत्व देने का आग्रह कम हुआ और जीवन को उसकी जटिलता और समग्रता में चित्रित करने की प्रवृत्ति बढ़ी।

इस तीसरे दौर की कविता के अन्तर्गत नागार्जुन की सतरंगे पंखों वाली और प्यासी पथराई आँखें, केदार की लीक और आलोक, सुमन के विश्वास बढ़ता ही गया और पर आँखें नहीं मरीं, नीरज के प्राणगीत और दबं दिया है, बीरेन्द्र मिश्र का लेखनी बेला, गजानन माधव मुक्तिबोध का चाँद का मुँह टेढ़ा है, नरेश मेहता की दूसरा सप्तक की कविताएँ तथा वन पाखी सुनो, गिरिजा कुमार माथुर के धूप के धान और शिला पंख चमकीले, भवानी प्रसाद मिश्र का गीत फरोश, शमशेर की दूसरा सप्तक की कविताएँ, कुछ कविताएँ तथा कुछ और कविताएँ तथा दुष्यन्त कुमार के सूर्य का स्वागत और आबाजों के घेरे आदि कविता संकलन आ जाते हैं।

हिन्दी की प्रगतिशील कविता का चौथा दौर सामाजिक इतिहास की दृष्टि से भारत-चीन संघर्ष की घटना से और साहित्येतिहास की दृष्टि से नयी कविता के दौर की समाप्ति से शुरू माना जा सकता है। सन् ६२ में चीन के साथ संघर्ष में भारतीय सेनाओं की पराजय और बाद में चीन द्वारा एकतरफा पीछे हटने की कार्यवाही ने भारत के राष्ट्रीय स्वाभिमान को गहरी चोट पहुँचायी। भारत-चीन संघर्ष ने न केवल भारत-चीन मैत्री और सद्भाव के एक लम्बे दौर को समाप्त कर दिया, बरन भारत के साम्यवादो आन्दोलन पर भी एक गहरा आघात किया। भारत के साम्यवादी एक गम्भीर वैचारिक संकट में आ पड़े, भारत के साथ इस संघर्ष के बाद ही अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में चीन ने रूस की कुछ स्थापित और अब तक मान्य सैद्धान्तिक स्थितियों की खुली आलोचना और निन्दा शुरू की। दो बड़े समाजवादी देशों के बीच के सैद्धान्तिक मतभेदों ने तमाम दुनियाँ के साम्यवादियों और प्रगतिशील जनवादियों को प्रभावित किया। इन्हीं प्रभावों में भारत का साम्यवादी दल, पहले दो और बाद में

कई गुटों में विभाजित हुआ। तरुण-विद्रोह का एक नया रूप नक्सलवाद सामने आया। इस युग की अन्य प्रमुख राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं में लाल बहादुर शास्त्री का प्रधान मंत्रित्व, पाकिस्तान के साथ युद्ध और ताशकन्द समझौता, १९६७ के चुनाव में पहली बार कांग्रेस के एकाधिकार का टूटना और अनेक प्रान्तों में गैर-कांग्रेसी सरकारों का निर्माण, १९६६ में राष्ट्रपति के पद के चुनाव में पहली बार कांग्रेस के आधिकारिक उम्मीदवार की हार कांग्रेस का विभाजन और अगले चुनावों में इन्दिरा गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस का और भी मजबूत होकर शासनाख्य होना, चैकोस्लोवाकिया में सोवियत सैनिक हस्तक्षेप तथा भारतीय महाद्वीप में एक नये स्वतन्त्र गणराज्य बांग्लादेश का जन्म प्रमुख हैं।

इन सभी घटनाओं ने इस दौर की प्रगतिशील कविता को प्रभावित किया। इस दौर के तरुण प्रगतिशील कवियों ने अपने-अपने समूहों को कुछ नयी संज्ञाएँ दीं और अपने-अपने ढंग से नयी कविता की 'निष्क्रियता', 'अनुभूतियों की प्रामाणिकता' और 'असम्पृक्ति' के विरुद्ध सीधी सम्पृक्ति के साथ अपने सामने की जिन्दगी का साक्षात्कार किया और उसे, बिम्ब-धर्मों मुहावरों से हट कर, कभी-कभी एक सपाट-बयानी के साथ भी प्रस्तुत किया। इन नयी संज्ञाओं में 'युयुत्सु कविता', 'प्रतिश्रुत कविता' और 'आज की कविता' ये तीन संज्ञाएँ आपेक्षिक रूप से अधिक प्रचलित रहीं।

तीसरे दौर में नयी कविता के वर्चस्व के कारण प्रगतिशील कवियों की राजनीतिक चेतना में भी एक तरह का भौंथरापन-सा आ गया था, वह सातवें दशक में नयी कविता के मिथ के टूटते-टूटते समाप्त होने लगा। नवयुवक कवियों की एक पूरी की पूरी पीढ़ी 'नयी कविता' से अपने को अलग घोषित करती हुई प्रगतिवादी दौर जैसे उत्साह के साथ कुंठाहीन स्वर में फिर से राजनीति को कविता का विषय बनाने लगी।

इस दौर की प्रगतिशील कविता में विद्रोह के तीन स्तर देखे जा सकते हैं : जनवादी विरोध, कुछ जिम्मेदार विद्रोह और एक दुस्साहसिकतापूर्ण समग्र विद्रोह। क्रान्तिकारी हिंसा को इससे पहले कभी कविता के केन्द्र में स्थापित करने की ऐसी कोशिश नहीं की गयी, जैसी इस युग के एक विद्रोही ग्रूप ने की है।

कुल मिला कर सातवें दशक की प्रगतिशील कविता अधिक प्रखरता पूर्वक राजनीतिक होकर भी निश्चित राजनीतिक दलों और सिद्धान्तों के दबाव से पाँचवें दशक की कविता की अपेक्षा अधिक मुक्त है। बड़े से बड़े साम्यवादी देश के नेताओं की आलोचना और यहाँ तक कि भर्त्सना करने की हिम्मत और गुंजाइश उसने प्राप्त कर ली। दो-तीन या और भी अधिक अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय साम्यवादी मतवादों के विकल्प के सामने रहने से नवयुवक प्रगतिशील कवि को अपनी रुझान और रुचि के अनुकूल मतवाद को स्वीकार करने या हर मुद्दे पर स्वयं सोच कर फैसला करने की जैसी गुंजाइश इस युग में रही, वैसी पहले कभी नहीं थी।

समसामयिक 'अकविता' आदि काव्यान्दोलनों के प्रभाव-स्वरूप इस युग की प्रगतिशील कविता में कभी-कभी शब्दों की निरर्थक संयोजना, वास्तविक दुनियाँ के अमूर्तिकरण और कुत्सापूर्ण शब्दावली के प्रयोग की प्रवृत्ति भी दिखायी देती है।

इस दौर की कविता के अन्तर्गत राजीव सक्सेना का आत्म निर्वासन, रण-जीत का इतिहास का दर्द, जुगमंदिर तायल का सूरज सब देखता है, मृत्युंजय उपाध्याय का किंगु, श्रीराम शलभ का कल सुबह होने से पहले, हरीश भादानी का सुलगते पिंड, केदारनाथ अग्रवाल का आग का आईना, भारतभूषण अग्रवाल का एक उठा हुआ हाथ और धूमिल का संसद से सड़क तक आदि संकलनों के अतिरिक्त कुमारेंद्र पारस नाथ सिंह, अजित पुष्कल, कृष्णमुरारी आदि अनेक तरुण कवियों की छिट-पुट कविताएँ आ जाती हैं।

पाँचवें दौर की कविता को इधर कुछ मित्रों ने आठवें दशक की कविता कहना शुरू किया है, यद्यपि इसका प्रारंभ सन् ७१ से नहीं ७४ से मानना चाहिए। इंदिरा गांधी के नेतृत्व में केन्द्रीय सरकार में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता के विरुद्ध जयप्रकाश नारायण के जनप्रतिनिधियों को वापस बुलाने के अधिकार की माँग के साथ जो जनान्दोलन आरम्भ हुआ, उसके दमन की परिणति भारत के समकालीन राजनीतिक इतिहास की अभूतपूर्व घटना आपात्काल की घोषणा के रूप में हुई और उसकी आड़ में इंदिराजी की वैयक्तिक तानाशाही की स्थापना ने पूरे देश के राजनीतिक माहौल को बदल डाला।

पहली बार संविधान द्वारा प्रदत्त लोगों के मूलभूत अधिकार उनसे छीन लिए गये, स्वतंत्र प्रेस का पूरी तरह गला घोट दिया गया और संजय गांधी का संविधानेतर सत्ताकेन्द्र विकसित हुआ। बीस महीने के आपात्काल के बाद ज्योंही चुनाव हुआ, जनता ने विभिन्न प्रतिपक्षी दलों को मिलाकर जनता पार्टी का गठन किया और इंदिराजी की वैयक्तिक तानाशाही को परास्त किया। इस युग की अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं में इंदिरा शासन का पुनरागमन, अफगानिस्तान में सोवियत सेनाओं का हस्तक्षेप, 'साम्यवादी' कम्प्यूचिया पर साम्यवादी वियतनाम का आक्रमण और अधिकार, पोलैंड में स्वतंत्र मजदूर संगठन सोलिडरिटी का विकास और देडू शिआओ पिङ् के नये नेतृत्व में चीन में नयी, उदार और आधुनिकीकरण की नीतियों का अनुपासन प्रमुख हैं। इंदिरा गांधी के जीवन के अन्तिम दिनों में असम का नरमेघ हुआ, पंजाब की समस्याओं ने उग्रतावादी हिंसा और प्रतिहिंसा का रूप धारण किया और आंध्र के स्पष्ट बहुमत प्राप्त मुख्यमंत्री को केन्द्र के इशारे पर सत्ताच्युत करके भारतीय राजनीति ने अपनी मूल्यहीनता की चरम सीमाओं का आभास कराया।

आठवें दशक की प्रगतिशील कविता की कुछ चारित्रिक विशेषताओं की ओर यहाँ संकेत किया जा सकता है। सातवें दशक की आक्रामक और युयुत्सु मुद्रा यहाँ कम है, जीवन के मूलभूत सरकारों का भरापूरा संसार—आँसू और मुस्कान के कोमल प्रसंग, घाटी में खिले फूल, नदी, सागर, पहाड़, पेड़, चिड़ियाएँ और बच्चे—एक सम्पूर्ण अहसास के साथ इस कविता में मौजूद हैं, इनके सहारे वह मनुष्य के भीतर के उस आदिम इतिहास से टकराती है, जहाँ से सभ्यता और संस्कृति के नाम पर मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण और उत्पीड़न का सिलसिला शुरू हुआ। कहा जा सकता है कि छोटी-छोटी अनुभूतियों और चीजों के सहारे यह कविता मनुष्य की जड़ों तक जाने की कोशिश करती है। यही कारण है कि इस कविता में आदमी का आदिम स्वरूप बार-बार उभरता है, वह अपनी कुल्हाड़ी, पत्थर, चूल्हा, आग, बैल, जाल, मछली, तीरकमान और लश्कर सहेजता है और अपनी सामूहिक स्मृति को नये अर्थ-संदर्भों से गहरा करता है। भारतीय कविता की परंपरागत कथात्मकता भी एक नये ढंग से इस दौर की कविता में फिर से उभरी। आम आदमी के कष्टपूर्ण जीवन और

संवर्ष को कुछ मूर्त कथात्मक संदर्भों में वार-वार उभारा गया है। एक और बात जिसकी ओर प्रभाकर श्रोत्रिय ने संकेत किया है, यह है कि सातवें दशक के कवि जिस साधारण जन के पक्षधर थे, वह उनकी कवितायें अन्य या मध्यम पुरुष में अलग खड़े श्रोता की हैसियत से ऊपर नहीं उठ पाया था, पर आठवें दशक की कविता में वह 'राम गुलाम हम तुम एक हैं। अपने ईमान को पैरों से तोलें। अपनी हिम्मत को खून सा घोलेँ ईमान में' की पूरी भागीदारी की स्थिति में आया है। फिर इस कविता में प्रतिश्रुति का स्वरूप भी कुछ बदला है; वह बाहरी, सैद्धान्तिक नहीं रही, अक्सर कविता के भीतर ही इस तरह समोई हुई और आत्मोयता की ऊष्मा से परिपूर्ण है कि उसका सतही राजनीतिक नामांकन कठिन है।

आठवें दशक की प्रगतिशील कविता के अन्तर्गत दुष्यन्त कुमार की गुजलों का प्रसिद्ध संकलन साये में धूप, रामदरश मिश्र का कंधे पर सूरज, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का जंगल का बंद, लीलाधर जगूड़ी के रात अब भी मौजूब है, बची हुई पृथ्वी तथा धबराये हुए शब्द, मणि मधुकर का बलराम के हजारों नाम, गिरिधर राठी का बाहर भीतर, चन्द्रकान्त देवताले का लकड़बग्घा हंस रहा है, रमेश रंजक के मिट्टी बोलती है और इतिहास दुबारा लिखो, विष्वनाथ तिवारी का साथ चलते हुए, वेणु गोपाल का हवाएँ चुप नहीं रहतीं, कुमार बिकल का एक छोटी सी लड़ाई, केदारनाथ सिंह का जमीन पक रही है, राजेश जोशी का एक बिन बोलेंगे पेड़, सोमदत्त का किस्से भरबों हैं, उदय प्रकाश का सुनो कारीगर, ज्ञानेन्द्रपति का शब्द लिखने के लिए यह कागज बना है और विजेन्द्र का ये आकृतियाँ पुम्हारी आदि संकलन आते हैं।

प्रगतिशील कविता के मील-पत्थर

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

बादल-राग

(एक)

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घनघोर
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर !
झर झर झर निर्झर-गिरि-सर में
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में
सरित्-तडितगति-चकित पवन में
मन में, विजन-गहन-कानन में
आनन-आनन में रव घोर कठोर
राग अमर ! अंबर में भर निज रोर !
अरे वर्ष के हर्ष
बरस तू बरस-बरस रसधार !
पार ले चल भुक्षको
बहा, दिखा भुक्षको भी
निज गर्जन-भैरव संसार !
उथल-पुथल कर हृदय
मचा हलाहल—
चल रे चल
मेरे पागल बादल !

धँसता दल दल
हँसता है नद खल-खल

बहता कहता कुल-कुल कल-कल कल-कल ।
 देख-देख नाचता हृदय
 बहने को महा विकल-बेकल,
 इस मरोर से—इसी शोर से—
 सघन घोर गुरु-गहन रोर से
 मुझे गगन का दिखला सघन वह छोर !
 राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर !

(दो)

ऐ निर्बन्ध !—
 अन्धतम-अगम-अनर्गल बादल
 ऐ स्वच्छन्द—
 मन्द चंचल समीर-रथ पर उच्छृंखल !
 ऐ उद्दाम !
 अपार कामनाओं के प्राण !
 बाधा-रहित विराट् !
 ऐ विप्लव के प्लावन,
 सावन-घोर गगन के ऐ सम्राट् !
 ऐ अट्ट पर टूट टूट पड़ने वाले उन्माद !
 विश्व-विभव को लूट-लूट लड़ने वाले अपवाद !
 श्री बिखेर, मुख-फेर कली के निष्ठुर पीड़न
 छिन्न-भिन्न कर पत्र-पुष्प-पादप-वन-उपवन
 वज्रघोष से ऐ प्रचण्ड
 आतंक जमाने वाले !
 कम्पित जंगम नीड़-विहंगम
 ऐ न व्यथा पाने वाले !
 भय के मायामय आंगन पर
 गरजो विप्लव के नव जलधर

२० / प्रगतिशील कविता के मील-पत्थर

(तीन)

तिरती है समीर, सागर पर
 अस्थिर सुख पर दुख की छाया
 जग के दग्ध हृदय पर
 निर्दय विप्लव की प्लावित माया—
 यह तेरी रणतरी
 भरी आकांक्षाओं से,
 घन भेरी-गर्जन से सजग, सुप्त अंकुर
 उर में पृथ्वी के, आशाओं से
 नवजीवन की, ऊंचा कर सिर
 ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल, फिर-फिर !
 बार-बार गर्जन
 वर्षण है मूसलधार
 हृदय थाम लेता संसार,
 सुन सुन घोर वज्र-हुंकार
 अज्ञानि-पात से शायित उन्नत क्षत-शत वीर
 क्षत-विक्षत हत अचल शरीर
 गगन-स्पर्शी स्पर्धा-धीर ।
 हंसते हैं छोटे पोधे लघुभार—
 शस्य अपार,
 हिल-हिल
 खिल-खिल
 हाथ हिलाते
 मुझे बुलाते
 विप्लव रव से शोभा पाते ।
 अट्टालिका नहीं रे
 आतंक भवन,

प्रगतिशील कविता के मील-पत्थर / २१

सदा पंक ही पर होता जल-विप्लव प्लावन
 क्षुद्र प्रफुल्ल जलज से सदा छलकता नीर
 रोग-शोक में भी हंसता है शैशव का मुकुमार शरीर ।
 रुद्र कोष है, क्षुब्ध-तोष
 अंगना-अंग से लिपटे भी
 आतङ्क-अंक से काँप रहे हैं
 घनी, वज्र-गर्जन से बादल
 त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं ।

जीण बाहु है शीर्ण शरीर
 तुझे बुलाता कृषक अधीर
 हे विप्लव के वीर !
 चूस लिया है इसका सार
 हाड़ मात्र ही है आधार
 ऐ जीवन के पारावार !

१६२३

भिक्षुक

वह आता—
 दो ट्रक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ।
 पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक
 चल रहा लकुटिया टेक,
 मुट्टी भर दाने को—भूख मिटाने को
 मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता—
 दो ट्रक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ।

साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाये
 बायें से वे मलते हुए पेट को चलते
 और दाहिना दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाये ।
 भूख से सूख ओंठ जब जाते
 दाता-भाग्यविघ्नाता से क्या पाते ?
 घूंट आँसुओं के पीकर रह जाते ।
 चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए
 और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं खड़े हुए ।

ठहरो अहो मेरे हृदय में है अमृत, मैं सींच दूँगा
 अभिमन्यु जैसे हो सकोगे तुम
 तुम्हारे दुःख मैं अपने हृदय में खींच लूँगा ।

१६२७

तोड़ती पत्थर

वह तोड़ती पत्थर;
 देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
 वह तोड़ती पत्थर ।
 नहीं छायादार
 पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;
 श्याम तन, भर बँधा यौवन,
 नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन,
 गुरु हथौड़ा हाथ,
 करती बार-बार प्रहार—
 सामने तर मालिका अट्टालिका प्राकार ।

बढ़ रही थी धूप;
 गर्मियों के दिन,
 दिवा का तमतमाता रूप;
 उठी झुलसती हुई लू,
 रुई ज्यों जलती हुई धू
 गर्द बिनगी छा गयी,

प्रायः हुई दुपहर—
 वह तोड़ती पत्थर ।

देखते देखा मुझे तो एक बार
 उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार;
 देख कर कोई नहीं,
 देखा मुझे उस दृष्टि से
 जो मार खा रोई नहीं,
 सजा सहज सितार,
 सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी शंकार ।
 एक छन के बाद वह काँपी सुघर
 दुलक माथे से गिरे सीकर,
 लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा—
 'मैं तोड़ती पत्थर ।'

१६३७

सुमित्रानंदन पंत

द्रुत झरो

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र !
 हे स्रस्त ष्वस्त ! हे शुष्क शीर्ण !
 हिम ताप पीत, मधुवात भीत,
 तुम बीतराग, जड़, पुराचीन !!

निष्प्राण विगत युग ! मृत विहंग ।
 जग-नीड़ शब्द ओ' श्वास-हीन,
 च्युत, अस्त-व्यस्त पंखों से तुम
 झर-झर अनन्त में हो विलीन !

कंकाल जाल जग में फेले
 फिर नवल रुधिर,—पल्लव लाली !
 प्राणों की मर्मर से मुखरित
 जीवन की मांसल हरियाली !

मंजरित विश्व में यौवन के
 जगकर जग का पिक, मतवाली
 निज अमर प्रणय स्वर मदिरा से
 भर दे फिर नव-युग की प्याली !

१६३४

वह बुढ़ा

खड़ा द्वार पर लाठी टेके, वह जीवन का बूढ़ा पंजर
चिमटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी, हिलते हड्डो के ढाँचे पर

उभरी ढीली नसें जाल सी, सूखी ठठरी से हैं लिपटी
पतझर में ठूँठे तरु से ज्यों, सूनी अमरबेल हो चिपटी

उसका लम्बा डील-डोल है, हट्टी-कट्टी काठी चोड़ी
इस खंडहर में बिजली सी, उन्मत्त जवानी होगी दौड़ी।

बैठी छाती की हड्डी अब, झुकी रीढ़ कमठा सी टेढ़ी
पिचका पेट, गढ़े कंधों पर, फटी बिवाई से है एड़ी।

बैठ, टेक धरती पर माथा, वह सलाम करता है झुक कर
उस धरती से पाँव उठा लेने को जी करता है क्षण भर!

घुटनों से मुड़ उसकी लम्बी, टाँगें-जाँघें सटीं परस्पर
झुका बीच में शीश, झुर्रियों का शीश्वर मुख निकला बाहर!

हाथ जोड़ चौड़े पंजों की गुंथी अंगुलियों को कर सम्मुख
मौन त्रस्त चितवन से, कातर वाणी से वह कहता निज दुख।

गर्मी के दिन, धरे उपरनी सिर पर लुंगी से ढाँपे तन—
नंगी देह भरी बालों से—बनमानुस सा लगता वह जन!

भूखा है जैसे पा कुछ गुनगुना, खड़ा हो, जाता वह घर
पिछले पैरों के बल उठ, जैसे कोई चल रहा जानवर!

काली नारकीय छाया निज, छोड़ गया वह मेरे भीतर
पैशाचिक सा कुछ, दुःखों से मनुज गया शायद उसमें मर!

१६३८

वे आँखें

अंधकार की गुहा सरीखी, उन आँखों से डरता है मन
भरा दूर तक उनमें दारुण दैन्य दुःख का नीरव रोदन!
अह, अथाह नैराश्य विवशता का उनमें भीषण सूनापन
मानव से पाशव पीड़न का देतीं वे निर्मम विज्ञापन!

फूट रहा उनमें गहरा आतंक, क्षोभ, शोषण, संशय, भ्रम
इब कालिमा में उनकी कँपता मन, उनमें मरघट का तम
ग्रस लेती दर्शक को वह दुर्जेय दया की भूखी चितवन
झूल रहा उस छायापट में युग-युग का जर्जर जन-जीवन!

वह स्वाधीन किसान रहा, अभिमान भरा आँखों में इसका
छोड़ उसे मंझघार आज संसार कगार सदृश वह खिसका!
सहराते वे खेत दृगों में, हुआ बेदखल वह अब जिनसे
हँसती थी उसके जीवन की हरियाली जिनके तृन-तृन से!

आँखों ही में घूमा करता वह उसकी आँखों का तारा
कारकुनों की लाठी से जो गया जवानी में ही मारा।
बिका दिया घर-द्वार महाजन ने न ब्याज की कीड़ी छोड़ी
रह रह आँखों में चुभती वह कुर्क हुई बरघों की जोड़ी।

उजरी उसके सिवा किसे कब पास दुहाने आने देती ?
अह आँखों में नाचा करती उजड़ गयी जो सुख की खेती !
बिना दवा-दरपन के घरनी स्वरग चली—आँखें आतीं भर
देखरेख के बिना दुधमुँही बिटिया दो दिन बाद गयी मर !

घर में विधवा रही पतोहू, लछमी थी, यद्यपि पति-धातिन
पकड़ मँगाया कोतवाल ने डूब कुएँ में मरी एक दिन ।
खैर, पैर की जूती जोरू, न सही एक दूसरी आती
पर जवान लड़के की सुध कर साँप लोटते, फटती छाती !

पिछले सुख की स्मृति आँखों में क्षण भर एक चमक है लाती
तुरत शून्य में गड़ वह चितवन तीखी नोक सदृश बन जाती ।
मानव की चेतना न ममता रहती तब आँखों में उस क्षण
हर्ष-शोक अपमान-म्लानि दुख-दैन्य न जीवन का आकर्षण !

उस अवचेतन क्षण में मानों वे सुहर करती अवलोकन
ज्योति-तमस के पदों पर युग-जीवन के पट का परिवर्तन !
अंधकार की अतल गुहा सी अह, उन आँखों से डरता मन
वर्ग-सभ्यता के मंदिर के निचले तल की वे वातायन !

१२४०

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

जूठे पत्ते

क्या देखा है तुमने नर को नर के आगे हाथ पसारे ?
क्या देखे हैं तुमने उसकी आँखों में खारे फव्वारे ?
देखे हैं ? फिर भी कहते हो कि नहीं तुम विप्लवकारी ?
तब तो तुम हिजड़े हो या हो महाभयंकर अत्याचारी !

अरे चाटते देखा जूठे पत्ते जिस दिन मैंने नर को ?
उस दिन सोचा : क्यों न लगा दूँ आग आज इस दुनिया भर को ?
यह भी सोचा : क्यों न टेंटुआ घोंटा जाय स्वयं जगपति का ?
जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का ?

जगपति ? कहाँ, अरे सदियों से वह तो हुआ राख की ढेरी ,
बरना समता-संस्थापन में लग जाती क्या इतनी देरी ?
छोड़ आसरा अलख शक्ति का, रे नर स्वयं जगत्पति तू है,
तू यदि जूठे पत्ते चाटे, तो तुझ पर लानत है, थू है !

ओ भिखमंगे ! अरे पराजित ! ओ मजलूम ! अरे चिर दोहित !
तू अखंड भण्डार शक्ति का, जाग अरे निद्रा-सम्मोहित !
प्राणों को तड़पाने वाली हुँकारों से जल-थल भर दे !
अनाचार के अम्बारों में अपना ज्वलित पत्नीता घर दे !

१२३७

विद्रोही

(एक)

हम ज्योति-पुंज दुर्दम प्रचण्ड
हम क्रान्ति-वज्र के घन-प्रहार
हम विप्लव-रणचंडिका-जनक
हम विद्रोही, हम दुर्निवार !

हम वज्रपाणि, हम कुलिश-हृदय
हम दृढ़-निश्चय, हम अचल-अटल
हम महाकाल के व्याल रूप
हम शेषनाग के अतुल गरल

हम दुर्गा के भीषण नाहर
हम सिंह गर्जना के प्रसार
हम जनक प्रलय रणचंडी के
हम विद्रोही, हम दुर्निवार !

हमने गति दे कर चलित किया
इन गतिविहीन ब्रह्माण्डों को
हमने ही तो है सृजित किया
रज के इन बर्तुल भाण्डों को

हमने नवसृजन प्रेरणा से
छिटकाये तारे अम्बर में
हम ही विनाश भर लाये हैं
इस निखिल विश्व-आडम्बर में

हम स्रष्टा हैं, हम प्रलयंकर
हम सतत क्रान्ति की प्रखर धार !

अपने शोणित से ऊषा को
हम दे आये कृंकुम सुहाग

आदशों के उद्दीपन से
हमने रवि को दी अमित आग

माटी भी उन्नतशीव हुई
जब नव चेतना उठी जाग
जीवन-रंग फैला, जब हमने
खेली प्राणों को रक्त-फाग

हो चला हमारे इंगित पर
जग में नवजीवन का प्रसार !

हो गयी सृजित संगीत कला
हमने जो छेड़ी नवल तान
उन्मुक्त हो गये भाव-विहग
जो भरी एक हमने उड़ान

हमने समुद्र-मंथन करके
भर दिये जगत् में अतुल रत्न
संस्कृति को चेरी कर लाये
अनवरत हमारे ये प्रयत्न

संस्कृति उभरी, लालित्य जगा
सुन पड़ी सभ्यता की पुकार !

(दो)

चेतन ने जब विद्रोह किया
तब जड़ता में जीवन आया
जीवन ने जब विद्रोह किया
तब चमक उठी कंचन काया

वह जो विकास, उत्क्रमण, प्रगति
प्रकटी जीवन के हिय-तल में

वह है केवल विद्रोह-छटा
जो खिल उठती है पल-पल में
तब बोलो क्या हम सहन करें
दुर्दान्त तिमिर का अनाचार !

हम घर से निकले हैं गढ़ने
नव चंद्र-सूर्य, नव-नव अम्बर
नव सिंधु-धरा, नव जन-समाज
नव राजकाज, नव काल-प्रहर

दिवकाल नये, दिक्पाल नये
सब ग्वाल नये, सब बाल नये
हम सिरजेंगे ब्रजभूमि नयी
गोपियाँ नयी, गोपाल नये

आओ हम सब मिल कर नभ से
ले आयेँ रवि-शशि को उतार !

अपने ये सब बीहड़ जंगल
अपने ये सब ऊँचे पहाड़
इक दिन निश्चय हिल-डोलेंगे
सिंहों की सी करके दहाड़

उस दिन हम विस्मित देखेंगे
यह निबिड़ तिमिर होते विलीन
उस दिन हम सस्मित देखेंगे
हम हैं अदीन, हम शक्ति-पीन

उस दिन दुःस्वप्नों की स्मृति सा
होगा बघिकों का भीम भार !
हम जनक प्रलय रणचंडी के
हम विद्रोही, हम दुर्निवार !

रामधारी सिंह 'दिनकर'

विपथगा

झन-झन-झन झन-झन झनन-झनन
झन-झन-झन झन-झन झनन-झनन
मेरी पायल झनकार रही तलवारों की झनकारों में,
अपनी आगमनी बजा रही मैं आप क्रुद्ध हुद्धारों में,
मैं अहंकार-सी कड़क उठी हँसती विद्युत की धारों में,
बन काल-हुताशन खेल रही पगली मैं फूट पहाड़ों में,
अँगड़ाई में भूचाल, साँस में लंका के उनचास पवन !

रस्सी से कसे जवान पाप-प्रतिकार न जब कर पाते हैं
बहनों की लुटती लाज देखकर काँप-काँप रह जाते हैं
शास्त्रों के भय से जब निरस्त्र आँसू भी नहीं बहाते हैं
पी अपमानों के गरल घूँट शासित जब होंठ चबाते हैं
जिस दिन रह जाता क्रोध मौन, मेरा वह भीषण जन्म-लगन !

श्वानों को मिलते दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुसाते हैं
माँ की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं
युवती के लज्जा-वसन बेच जब ब्याज चुकाये जाते हैं
मालिक जब तेल-फुलेलों पर पानी-सा द्रव्य बहाते हैं
पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमन्त्रण !

चढ़कर जुन्न-सी चलती हैं मृत्युञ्जय वीर कुमारों पर
आतंक फैल जाता कानूनी पार्लमेन्ट, सरकारों पर

'नीरो' के जाते प्राण सूख मेरी कठोर हुंकारों पर
कर अट्टहास इठलाती हूँ 'जारों' के हाहाकारों पर
झंझा सी पकड़ झकोर हिला देती दम्भी का सिंहासन !

मैं निस्तेजों का तेज, युगों के मूक मोन की वाणी
दिलजले शासितों के दिल की मैं जलती हुई कहानी
सदियों की जब्ती तोड़ जगी मैं उस ज्वाला की रानी
मैं जहर उगलती फिरती हूँ, मैं विष से भरी जवानी
भूखी बाघिन की घात क्रूर, आहत भुजंगिनी का दंशन !

असि की नोकों से मुकुट जीत अपने सिर उसे सजाती हूँ
ईश्वर का आसन छीन, क्रूद मैं आप खड़ी हो जाती हूँ
थर-थर करते कानून-न्याय इंगित पर जिन्हें नचाती हूँ
भयभीत पातकी घमों से अपने पग मैं धुलवाती हूँ
सिर झुका घमंडी सरकारें करती मेरा अर्चन-पूजन !

मुझ विपथगामिनी को न ज्ञात किस रोज किधर से आऊँगी
मिट्टी से किस दिन जाग क्रुद्ध अम्बर में आग लगाऊँगी
आँखें अपनी कर बन्द देश में जब भूकम्प मचाऊँगी
किसका टूटेगा शृङ्ग, न जाने किसका महल गिराऊँगी
निर्बन्ध, क्रूर, निर्मोह सदा मेरा कराल नर्तन-गर्जन !
झन-झन-झन झन-झन झनन-झनन !

दिल्ली और मास्को

(एक)

जय विधायके अमर क्रान्ति की ! अरुण देश की रानी !
रक्त-कुसुम-धारिणि ! जगतारणि ! जय जय शिवे, भवानी !

अरुण विश्व की काली जय हो, लाल सितारों वाली जय हो
दलित, बुधुधु, विषण्ण मनुज की शिखा रुद्र मतवाली, जय हो ।

जगज्ज्योति जय जय, भविष्य की राह दिखाने वाली
जय समत्व की शिखा, मनुज की प्रथम विजय की लाली
भरे प्राण में आग, भयानक विप्लव का मद ढाले
देश देश में घूम रहे तेरे सैनिक मतवाले ।

नगर नगर जल रही भट्टियाँ, घर घर सुलग रही चिगारी
यह आयोजन जगद्हन का, यह जल उठने की तैयारी
देश देश में शिखा क्षोभ की, उमड़ घुमड़ कर बोल रही है
सरज रही चोटियाँ धूल की, धरती क्षण क्षण डोल रही है

ये फूटे अंगार, कड़े अम्बर में लाल सितारे
फटी भूमि, वे बहे ज्योति के लाल लाल फव्वारे
वर्ग-विषमता के विरुद्ध सारा संसार उठा है
अपना बल पहचान लहर कर पारावार उठा है
छिन्न भिन्न हो रहीं मनुजता के बंधन की कड़ियाँ
देश देश में बरस रहीं आजादी की फुलझड़ियाँ ।

(दो)

एक देश है जहाँ विषमता से अच्छी हो रही गुलामी
जहाँ मनुज पहले स्वतंत्रता से ही रहा साम्य का कामी
प्रमित ज्ञान से जहाँ जाँच हो रही दीप्त स्वातंत्र्य समर की
जहाँ मनुज है पूज रहा जग को, बिसार सुधि अपने घर की ।

जहाँ मृषा सम्बन्ध विश्व-मानवता से नर जोड़ रहा है
जन्मभूमि का भाग्य जगत की नीति-शिला पर फोड़ रहा है

चिल्लाते हैं 'विश्व, विश्व' कह जहाँ चतुर नर ज्ञानी
बुद्धि-भीरु सकते न डाल जलते स्वदेश पर पानी
जहाँ मास्को के रणधीरों के गुण गाये जाते हैं
दिल्ली के रुधिराक्त वीर को देख लोग सकुचाते हैं।

(तीन)

दिल्ली, आह कलंक देश का, दिल्ली आह ग्लानि की भाषा !
दिल्ली, आह मरण पीरुष का, दिल्ली, छिन्न-भिन्न अभिलाषा !
विदेश देश की छाती पर ठोकर की एक निशानी
दिल्ली, पराधीन भारत की जलती हुई कहानी !
मरे हुआँ को ग्लानि जीवितों को रण की ललकार
दिल्ली, वीर-विहीन देश की गिरी हुई तलवार !

बरबस लगी देश के होंठों से यह भरी जहर की प्याली
यह नागिन स्वदेश-हृदय पर गरल उँडेल लोटने वाली
प्रश्न चिह्न भारत का, भारत के बल की पहचान
दिल्ली, राजपुरी भारत की, भारत का अपमान !

(चार)

ओ समता के वीर सिपाही, कहो, सामने कौन अड़ी है ?
बल से दिये पहाड़, देश की छाती पर यह कौन पड़ी है ?
यह है परतन्त्रता देश की, रुधिर देश का पीने वाली
मानवता कहता तू जिसको, उसे चबाकर जीने वाली !

यह पहाड़ के नीचे पिसता हुआ मनुज क्या प्रेय नहीं है ?
इसका मुक्ति-प्रयास स्वयं ही, क्या उज्ज्वलतम श्रेय नहीं है ?
यह जो कटे वीर सुत माँ के, यह जो बही रुधिर की धारा
यह जो डोली भूमि देश की, यह जो काँप गया नभ सारा

यह जो उठी शौर्य की ज्वाला, यह जो खिला प्रकाश
यह जो खड़ी हुई मानवता रचने को इतिहास
कोटि-कोटि सिंघों की यह जो उट्टी मिलित दहाड़
यह जो छिपे सूर्य-शशि, यह जो हिलने लगे पहाड़ !

सो क्या था विस्फोट अनर्गल ? बालकुतूहल ? नर-प्रमाद था ?
निस्पेषित मानवता का यह क्या न भयङ्कर तूर्य-नाद था ?
इस उद्वेलन-बीच प्रलय का था पूरित उल्लास नहीं क्या ?
साल भवानी पहुँच गयी है भरत-भूमि के पास नहीं क्या ?

फूट पड़ी है क्या न प्राण में नये तेज की धारा ?
गिरने को हो रही छोड़कर नींव, नहीं क्या कारा ?
नगपति के पद में जब तक है, बँधी हुई जंजीर,
तोड़ सकेगा कौन विषमता का प्रस्तर-प्राचीर ?

(पाँच)

दहक रही मिट्टी स्वदेश की, खोल रहा गंगा का पानी
प्राचीरों में गरज रही है, जंजीरों से कसी जवानी
यह प्रवाह निर्भीक तेज का, यह अजस्र यौवन की धारा
अनवरुद्ध यह शिखा यज्ञ की, यह दुर्जय अभिमान हमारा ।

यह सिद्धाग्नि प्रबुद्ध देश की जड़ता हरने वाली
जन जन के मन में बन पीरुष-शिखा विहरने वाली
अपित करो समिध, आओ हे समता के अभियानी
इसी कुंड से निकालेगी भारत की लाल भवानी ।

(छह)

हाँ भारत की लाल भवानी, जवा-कुसुम के हारों वाली
शिवा, रक्त-रोहित-वसना, कबरी में लाल सितारों वाली

कर में लिये त्रिशूल कमण्डल, दिव्य शोभिनी, सुरसरि-स्नाता
राजनीति की अचल स्वामिनी, साम्य-धर्म-ध्वज-धर की माता
भरत-भूमि की मिट्टी से शृङ्गार सजाने वाली
चढ़ हिमाद्रि पर विश्व-शांति का शंख बजाने वाली ।

(सात)

दिल्ली का नभ दहक उठा, यह श्वास उसी कल्याणी का है
चमक रही जो लपट चतुर्दिक्, अंचल लाल भवानी का है
खोल रहे जो भाव वह्निमय, ये हैं आशीर्वाद उसी के
'जय भारत' के तुमुल रोर में गुंजित संगर-नाद उसी के

दिल्ली के नीचे मर्दित अभिमान नहीं केवल है
दबा हुआ शत-लक्ष नरों का अन्न-वस्त्र, धन-बल है
दबी हुई इसके नीचे भारत की लाल भवानी
जो तोड़े यह दुर्ग, वही है समता का अभियानी ।

हरिवंशराय 'बच्चन'

लहरों का निमंत्रण

तीर पर कैसे रूकूं मैं, आज लहरों में निमंत्रण
रात का अन्तिम प्रहर है, झिलमिलाते हैं सितारे
वक्ष पर युग बाहु बांधे, मैं खड़ा सागर किनारे
वेग से बहता प्रभंजन, केश पट मेरे उड़ता
शून्य में भरता उदधि-उर की रहस्यमयी पुकारें
इन पुकारों की प्रतिध्वनि, हो रही मेरे हृदय में
है प्रतिच्छायित जहाँ पर, सिन्धु का हिल्लोल-कम्पन
तीर पर कैसे रूकूं मैं आज लहरों में निमंत्रण !

जड़ जगत में वास कर भी, जड़ नहीं व्यवहार कवि का
भावनाओं से विनिर्मित, और ही संसार कवि का
बूंद के उच्छ्वास को भी अनसुना करता नहीं वह
किस तरह होता उपेक्षा-पात्र पारावार कवि का
विश्व पीड़ा से सुपरिचित हो तरल बनने पिबलने
त्याग कर आया यहाँ कवि, स्वप्न-लोकों के प्रलोभन
तीर पर कैसे रूकूं मैं आज लहरों में निमंत्रण !

आज अपने स्वप्न को मैं, सच बनाना चाहता हूँ
दूर की इस कल्पना के, पास जाना चाहता हूँ
चाहता हूँ तैर जाना, सामने अंबुधि पड़ा जो
कुछ विभा उस पार की इस पार लाना चाहता हूँ

स्वर्ग के भी स्वप्न भू पर, देख उनसे दूर ही था
किन्तु पाऊंगा नहीं, कर आज अपने पर नियंत्रण
तीर पर कैसे रुकूँ मैं आज लहरों में निमंत्रण !

पोत अगणित इन तरंगों ने डुबोये, मानता मैं
पार भी पहुँचे बहुत से, बात यह भी जानता मैं
किन्तु होता सत्य यदि यह भी सभी जलयान डूबे
पार जाने की प्रतिज्ञा, आज बरबस ठानता मैं
डूबता मैं किन्तु उतराता सदा व्यक्तित्व मेरा
हो युवक डूबें भले ही, है कभी डूबा न यौवन
तीर पर कैसे रुकूँ मैं आज लहरों में निमंत्रण !

निर्माण

नीड़ का निर्माण फिर फिर !

नेह का आह्वान फिर फिर !

वह उठी आँधी कि नभ में छा गया सहसा अँधेरा
धूलि घूसर बादलों ने भूमि को इस भाँति घेरा
रात सा दिन हो गया फिर रात आयी और काली
लग रहा था अब न होगा इस निशा का फिर सबेरा
रात के उत्पात भय से भीत जन जन, भीत कण कण
किन्तु प्राची से उषा की मोहनी मुस्कान फिर फिर !

नीड़ का निर्माण फिर फिर !

वह चले झोंके कि काँपे भीम कायावान भूधर
जड़ समेत उखड़-पुखड़ कर गिर पड़े टूटे बिटप वर
हाथ तिनकों से विनिर्मित घोंसलों पर क्या न बीती

डगमगाए जबकि कंकड़ हूँट पत्थर के महल—घर
बोल आशा के विहंगम, किस जगह पर तू छिपा था
जो गगन पर चढ़ उठाता गर्व में निज तान फिर फिर
नीड़ का निर्माण फिर फिर !

क्रुद्ध नभ के वज्रदन्तों में उषा है मुस्कराती
घोर गर्जन-मय गगन के कंठ में खग पंक्ति गाती
एक चिड़िया चोंच में तिनका लिए जो जा रही है
वह सहज में ही पवन उनचास को नीचा दिखाती
नाथ के दुख से कभी दबता नहीं निर्माण का सुख
प्रलय की निस्तब्धता से सृष्टि का नव गान फिर फिर
नीड़ का निर्माण फिर फिर !

नेह का आह्वान फिर फिर !

छलयुग का कोरस

अम्बर देवी, जम्बर बकरा
तागड़ धिन्ना नागर बेल ।

छोटा नाम बड़ा पर दर्शन, महिमा और बड़ी मशहूर
उससे और बड़े हैं पंडे, सत्ता-भक्ता-मद में चूर
भेंट चढ़ाएँ, धक्के खाएँ भगत, मचाएँ वे रंगरेल
अम्बर देवी, जम्बर बकरा, तागड़ धिन्ना नागर बेल ।

गांधी की आँधी आयी थी, बीते लगभग बरस पचास
अपने साथ सपन लायी थी, सब कुछ होगा सबके पास
वादों की लादी भर जनता, आज रही है काँधों श्लेष
अम्बर देवी, जम्बर बकरा, तागड़ धिन्ना नागर बेल ।

आसन भी है, शासन भी है, अफसर, दफतर, फाइल, नोट
पुलिस, कचहरी, पलटन-सलटन, सबसे ताकतवर है वोट
वोट नहीं क्यों पाया तुमने ? तिकड़मबाजी में तुम फेल
अब्बर देबी, जब्बर बकरा, तागड़ घिन्ना नागर बेल ।

गुल समाजवादी समाज का, पूँजीवाद खिला; अंधेर !
कलकत्ते की ओर चले थे, पहुँचे जाकर जैसलमेर !
बहुत दिनों पर भेद खुला है, ऊँट रहा है खोंच नकेल
अब्बर देबी, जब्बर बकरा, तागड़ घिन्ना नागर बेल ।

आय इकाई, बजट दहाई, प्लान सैकड़ा, कर्ज हज़ार
खर्च लाख में, साख बँधी है देता है हर देश उधार
पन्द्रह पीढ़ी गिरवी रख दी लीडर जी ने जूआ खेल
अब्बर देबी, जब्बर बकरा, तागड़ घिन्ना नागर बेल ।

गाँठ बँधी है किस नारी से, किस नारो से प्रलटाँ चार
इज्जत, नीति, हया, मर्यादा धोकर पी बैठी सरकार
घर की रानी पानी भरती, सर पर करती राज रखेल
अब्बर देबी, जब्बर बकरा, तागड़ घिन्ना नागर बेल ।

तीन सतर की कविता निकली, तीस पेज का निकला लेख
तीन टांग की बछिया ब्याई, ताऊ गाड़े छत्तिस मेख
सींग हिल्लता है पगुराता दुनियाँ-देखा बुढ़वा बेल
अब्बर देबी, जब्बर बकरा, तागड़ घिन्ना नागर बेल ।

नागार्जुन

अकाल और उसके बाद

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोयी उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त

दाने आए घर के अन्दर कई दिनों के बाद
धुँआ उठा आँगन के ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कोए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद ।

पीपल के पीले पत्ते

खड़ खड़ खड़ करने वाले
ओ पीपल के पीले पत्ते !
अब न तुम्हारा रहा जमाना
शकल पुरानी रंग पुराना
सीख पुरानी ढंग पुराना
अब न तुम्हारा रहा जमाना
आज गिरो कल गिरो कि परसों

तुमको तो अब गिरना ही है
 बबदल गयी ऋतु राह देखती लाल-लाल पत्तों की दुनियाँ
 दूरे-दूरे कुछ भूरे-भूरे दूतों से लद रही टहनियाँ !
 इनका स्वागत करते जाओ
 पतझर आया झरते जाओ
 ओ पीपल के पीले पत्ते !

लाल गुलाबी पत्ते कैसे
 लह-लह-लह लहलहा रहे हैं
 कौसी सुन्दर रात चाँद की
 किरनों में ये नहा रहे हैं
 छलक रहा इनमें जीवन-रस
 दौड़ रही है इन पर साली
 बुनने लगे आँख खुलते ही
 ये स्वर्णिम सपनों की जाली
 यह इनका युग, ये इनके दिन
 रहे अन्त की घड़ियाँ तुम गिन
 हट जाओ इनको अवसर दो
 छोटे हैं, बढ़ने का वर दो
 पूर्ण हो रही आयु तुम्हारी
 तुम हल्के इनका दिल भारी
 राह रोक कर खड़े न होना
 झूठ मूठ के बड़े न होना
 सारा श्रेय तुम्हें दे देंगे
 अपने पूर्वज की उदारता
 जीवन भर ये याद रखेंगे
 ओ पीपल के पीले पत्ते !

प्रत्यावर्तन

आज तेरी गोद में यह शीश रखकर
 क्या बताऊँ मैं कि जो विश्राम पाया !

श्रान्त होकर बहुत ही असमर्थ होकर
 लक्ष्य की कल्पित पहुँच से हाथ धोकर
 व्यक्ति खग सम पड़ा था कब से न जाने
 तुम अमृतमयि, आ गयीं सहसा जिलाने ।
 हो रहे थे आँसुओं से गाल गीले
 वेदना से दीनता से नेत्र पीले
 नहीं था कोई कि जो ममता दिखाता
 नहीं था कोई कि जो आशा दिलाता
 इस विषम स्थिति में तुम्हीं ने दुख बँटा कर
 मृदु मनोरम अँगुलियों से मधु चटा कर
 मलय चंदन लेप का मुझ को बचाया ।

श्रान्त हिमवत् के सुशीतल अंक में भी
 और मानस के अमल उत्संग में भी
 कहीं भी मैंने नहीं वह तृप्ति पायी
 कहीं भी मुझको न ऐसी नींद आयी
 धन्य अनुशासन तुम्हारी तर्जनी का
 हो गया मालूम जीने का तरीका !
 मधुर हो तुम और बंधन भी मधुर है
 वेड़ियाँ हैं किन्तु इनमें दिव्य सुर है
 देख कर अवसाद मेरा हिल गयीं तुम
 देख कर मुस्कान मेरी खिल गयीं तुम
 भर गया मैं स्फूर्ति से, नव चेतना से
 क्योंकि तुम परिपूर्ण थी संवेदना से !

व्यक्तिगत सुख-दुःख को देकर तिलांजलि
कौन किसके लिए उद्यत रहा सांजलि !
धन्य हो तुम, धन्य ऐसी छत्र-छाया !

देखना सब कुछ मुझे था स्वयं जाकर
नदी नव वन गिरि मरुस्थल और सागर
पार करना था उदधि को तैर करके
नाप आना था चराचर सैर करके
नील नभ की परिधि की थी थाह पानी
उच्चतम अभियान की थी राह पानी;
पर तुम्हारे सामने तो एक मैं था
लक्ष्य मैं था, ध्येय मैं था, टेक मैं था
हृदय में पीड़ा, दृगों में लिये पानी
देखते पथ काट दी सारी जवानी !
मात्र मेरी भावना ही रात दिन थी
देवि ! तेरी साधना कितनी कठिन थी !
निद्रु हो मैंने तुम्हारी बलि चढ़ा दी
क्योंकि आकांक्षा बहुत अपनी बढ़ा ली
पर असंभव था व्यथा का भार ढोना
भूल जाना तुम्हें, फिर निश्चिन्त होना
लगा नीरस अकेले घूनी रमाना
बुद्धि का शासन हृदय ने जब न माना
कल्पना के पंख सुन्दर तोड़ डाले
भूमि पर चलने लगा तो पड़े छाले
हो सका मुझको न अब तक ज्ञात उस दिन
तुम उठा लायीं कि मैं ही स्वयं आया !
आज तेरी गोद में यह शीश रखकर
क्या बताऊँ मैं कि जो विश्राम पाया !

१६४२

मंत्र

ओं शब्द ही ब्रह्म है
ओं शब्द और शब्द और शब्द और शब्द
ओं प्रणव, ओं नाद, ओं मुद्राएं
ओं वक्तव्य, ओं उद्गार ओं घोषणाएं
ओं भाषण...
ओं प्रवचन...
ओं हुंकार, ओं फटकार, ओं शीत्कार
ओं फुसफुस, ओं फुत्कार, ओं चीत्कार
ओं आस्फालन, ओं इंगित, ओं इशारे
ओं नारे और नारे और नारे और नारे

ओं सब कुछ, सब कुछ, सब कुछ
ओं कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं
ओं पत्थर पर को दूब, खरगोश के सींग
ओं नमक-तेल-हल्दी-जीरा-हींग
ओं मूस की लेड़ी, कनेर के पात
ओं डायन की चीख, औघड़ को अटपट बात
ओं कोयला-इस्पात-पेट्रोल
ओं हमी हम ठोस, बाकी सब फूटे ढोल

ओं इदमन्नं, इमा आपः इदमाज्यं, इदं हविः
ओं यजमान, ओं पुरोहित, ओं राजा, ओं कविः
ओं क्रान्तिः क्रान्तिः क्रान्तिः सर्वग्वं क्रान्तिः
ओं शांतिः शांतिः शांतिः सर्वग्वं शांतिः
ओं भ्रांतिः भ्रांतिः भ्रांतिः सर्वग्वं भ्रांतिः
ओं बचाओ बचाओ बचाओ बचाओ

ओं हटाओ हटाओ हटाओ हटाओ
ओं घेराओ घेराओ घेराओ घेराओ
ओं निभाओ निभाओ निभाओ निभाओ

ओं दलों में एक दल अपना दल, ओं
ओं अंगीकरण, शुद्धीकरण, राष्ट्रीयकरण
ओं मुष्टीकरण, तुष्टीकरण, पुष्टीकरण
ओं एतराज, आक्षेप, अनुशासन
ओं गद्दी पर आजन्म बजासन
ओं ट्रिब्युनल ओं आशवासन
ओं गुट निरपेक्ष सत्तासापेक्ष जोड़ तोड़
ओं छल-छन्द ओं मिथ्या ओं होड़महोड़
ओं बकबास, ओं उद्घाटन
ओं मारण-मोहन-उच्चाटन

ओं काली काली काली महाकाली महाकाली
ओंम्मार मार मार, वार न जाए खाली
ओं अपनी खुशहाली
ओं दुश्मनों की पामाली
ओम्मार मार, मार, मार, मार, मार, मार
ओ अपोजिशन के मुंड बने तेरे गले का हार
ओं ऐं ह्रीं क्ली हूं आड्
ओं हम चबाएँगे तिलक और गांधी की टांग
ओं बूढ़े की आँख, छोकरी का काजल
ओं तुलसीदास, बिल्वपत्र, चन्दन, रोली, अक्षत, गंगाजल
ओं शेर के दाँत, भालू के नाखून, मर्कट का फोता
ओं हमेशा हमेशा हमेशा करेगा राज मेरा पोता
ओं छः छः फूः फूः फट् फिट् फुट्
ओं शत्रुओं की छाती पर लोहा कुट

ओं भैरो, भैरो, भैरो, ओं बजरंगबली
ओं बन्दूक का टोटा, पिस्तौल की नली
ओं डालर, ओं रुबल, ओं पाउंड
ओं साउंड, ओं साउंड, ओं साउंड

ओम् ओम् ओम्
ओम् धरती, धरती, धरती, व्योम् व्योम् व्योम्
ओं अष्ट धातुओं की ईंटों के भट्ठे
ओं महामहिम, महामहो, उल्लू के पट्ठे
ओं दुर्गा दुर्गा दुर्गा तारा तारा तारा
ओं इसी पेट के अन्दर समा जाए सर्वद्वारा
हरिः ओं तत्सत् हरिः ओम् तत्सत्

केदारनाथ अग्रवाल

एक बच्चे के जन्म पर

हाथी सा बलवान, जहाजी हाथों वाला और हुआ
सूरज सा इन्सान तरेरी आँखों वाला और हुआ
एक हथौड़े वाला घर में और हुआ !

माता रही विचार अंधेरा हरने वाला और हुआ
दादा रहे निहार सबेरा करने वाला और हुआ
एक हथौड़े वाला घर में और हुआ !

जनता रही पुकार, सलामत लाने वाला और हुआ
सुनले रो सरकार ! कयामत ढाने वाला और हुआ
एक हथौड़े वाला घर में और हुआ !

नागार्जुन के बाँदा आने पर

यह बाँदा है
सूदखोर आदत वालों की इस नगरी में
जहाँ मार काबर कछार मड़ुवा की फसलें
कृषकों के पौरुष से उपजा कण-कण सोना
लड़ियों में सद-सद कर आकर

५० / प्रगतिशील कविता के मील-पत्थर

बीच हाट में बिक कर कोठों गोदामों की
गहरी खाहों में खो जाता है जा जा कर
और यहाँ पर रामपदारथ, रामनिहोरे
बेनी पंडित, बाबुदेव बल्देव विघाता
चन्दन, चतुरी और चतुर्भुज
गाँवों से आ आ कर गहने गिरवी रखते
बड़े ब्याज के मुँह में बरबस-बेबस घसते
फिर भी घर का खर्च नहीं पूरा कर पाते
मोटा खाते, फटा पहनते
लस्टम-पस्टम-जैसे-तैसे मरते-खपते

यह बाँदा है
और यहाँ पर मैं रहता हूँ
जीवन-यापन कठिनाई से ही करता हूँ
कभी आठ-दस-बीस पंक्तियाँ
और कभी कविता लिखकर
प्यासे मन की प्यास बुझा लेता हूँ रस से
शायद ही आता है कोई मित्र यहाँ पर
शायद ही आती है मेरे पास चिट्ठियाँ
मेरे कवि मित्रों ने मुझ पर कृपा न की है
इसीलिए रहता उदास हूँ, खोया खोया
अपने दुःख ददों में डूबा
जनसाधारण की हालत से ऊबा-ऊबा
बाण-बिधे पक्षी सा घायल
जल से निकली हुई मीन सा विकल तड़पता
इसीलिए आतुर रहता हूँ
कभी कभी तो कोई आए
छठे-छमासे चार-पाँच दिन तो रह जाए

प्रगतिशील कविता के मील-पत्थर / ५१

मेरे साथ बिताए
काव्य-कला, साहित्य-क्षेत्र की छटा दिखाए
और मुझे रस से भर जाए, मधुर बनाए
फिर जाए, जीता मुझको कर जाए ।

आखिर मैं भी तो मनुष्य हूँ
और मुझे भी कवि-मित्रों का साथ चाहिए
लालायित रहता हूँ सबसे मैं मिलने को
श्याम-सलिल के श्वेत-कमल सा खिल उठने को
सच मानो जब यहाँ निराला जी आए थे
उन्हें देखकर मुग्ध हुआ था, धन्य हुआ था
कविताओं का पाठ उन्हीं के मुख से सुनकर
गन्धर्वों को भूल गया था
तानसेन को भूल गया था
सूरदास, तुलसी, कबीर को भूल गया था
ऐसी वाणी थी हिन्दी के महाकृती की ।
तब यह बाँदा काव्य-कला की पुरी बना था
और साल-पर-साल यहाँ मधुमास रहा था
बम्बेश्वर के पत्थर भी बन गए हृदय थे
चूनरिया बन गयी हवा थी गीने वाली
यह धरती हो गयी वधू थी फूलों वाली
और गगन का राजा सूरज दूल्हा बन कर
चूम रहा था प्रिय दुल्हन को ।
बंधु आज भी वह दिन मुझको नहीं भूलता
जब तुम आए ।
उसकी स्मृति अब भी बेले सी महक रही है
उस दिन का आनन्द आज भी
कालिदास का छन्द बना मन मोह रहा है

मुक्त मोर बन श्याम बदरिया भरे हृदय में
दुपहरिया में शाम-सबरे नाच रहा है
रैन-अँधेरे में चंदनिया बाँह पसारे
हमको सबको भेंट रहा है
संभवतः उस दिन मेरा नव जन्म हुआ था
संभवतः उस दिन मुझको कविता ने चूमा
संभवतः उस दिन मैंने हिमगिरि को देखा
गंगा के कूलों की मिट्टी मैंने पायी
उस मिट्टी में उगती फसलें मैंने पायीं

और उसी के कारण अब तक बाँदा में जीवित रहता हूँ
और उसी के कारण अब तक कविता की रचना करता हूँ
और तुम्हारे लिए पसारे बाँह खड़ा हूँ
आओ साथी गले लगा लूँ
तुम्हें, तुम्हारी मिथिला की प्यारी धरती को
तुममें व्यापे विद्यापति को
और वहाँ की जनवाणी के छन्द चूम लूँ
और वहाँ के गड़-पोखर का पानी ठूकर नयन जुड़ा लूँ
और वहाँ के दुख मोचन मोहन माँझी को मित्र बना लूँ
और वहाँ के हर चावल को हाथों में ले हृदय लगा लूँ
और वहाँ की आब हवा से वह सुख पा लूँ
जो गीतों में गाया जाकर कभी न चुकता
जो नृत्यों में नाचा जाकर कभी न चुकता
जो आँखों में आँजा जाकर कभी न चुकता

अहो भाग्य है जो तुम आए मुझसे मिलने
इस बाँदा में चार रोज के लिए ठहरने
अहो भाग्य है मेरा, मेरे घर वालों का

जिनको तुम स्वागत में हँसते देख रहे हो
 अहो भाग्य है इस जीवन के इन फूलों का
 जिनको तुम अपनी कविता में सोच रहे हो
 अहो भाग्य है बम्बेश्वर की चौड़ी चकली चट्टानों का
 जिनको तुमने प्यार किया है, सहलाया है
 अहो भाग्य है केन नदी के इस पानी का
 जिसकी धारा बनी तुम्हारे स्वर की धारा
 अहो भाग्य है इस बाँदा की कठिन भूमि का
 जिसको तुमने चरण छुआ कर जिला दिया है।

कुछ छोटी कविताएँ

एक

तेजधार का कर्मठ पानी
 चट्टानों के ऊपर चढ़कर
 मार रहा है
 धूँसे कसकर
 तोड़ रहा है तट चट्टानी

दो

चील दबाये है
 पक्षों में
 मेरे दिल को
 हरी घास पर
 खुसी हवा में
 जिसे धूप में
 मैंने रक्खा

तीन

मैं उसे खोजता हूँ
 जो आदमी है
 और अब भी आदमी है
 तबाह होकर भी आदमी है
 चरित्र पर खड़ा
 देवदार की तरह बड़ा।

चार

आज नदी बिल्कुल उदास थी
 सोयी थी अपने पानी में
 उसके दर्पण पर
 बादल का वस्त्र पड़ा था
 मैंने उसको नहीं जगाया
 दबे पाँव घर वापस आया !

पाँच

हम जियें न जियें दोस्त
 तुम जियो एक नौजवान की तरह
 खेत में झूम रहे धान की तरह
 मौत को मार रहे बान की तरह
 हम जियें न जियें दोस्त
 तुम जियो अजेय इन्सान की तरह
 मरण के इस रण में अमरण
 आकर्ण तनी
 कमान की तरह।

ओ मेरे संसार

जैसे कोई सितारिया द्रुत में सितार को बजाए
लय में पहुँच कर वह स्वयं लय हो जाए
फिर न वह सितार को बजाए—

चलता हाथ ही बजाए

और वह संगीत—संस्कृत संगीत

तात्विक संगीत हो जाए

केवल आनन्द ही आनन्द लहरे और लहराए

केवल शरीर ही उसका

सितार से टिका रह जाए ।

ओ मेरे संसार !

मैं यही तुमसे पाऊँ

जब तक मैं जीऊँ, तुम्हें बजाऊँ

न मैं रुकूँ, न कोई रोक पाए

आयु मैं अपनी इस तरह बिताऊँ ।

त्रिलोचन

कस्मै देवाय

(एक सानेट)

मैंने उनके लिए लिखा है जिन्हें जानता
हूँ जीवन के लिए लगाकर अपनी बाजी
जूझ रहे हैं, जो फेंके टुकड़ों पर राजी
कभी नहीं हो सकते हैं । मैं उन्हें मानता

हूँ आगामी मनुष्यताओं का निर्माता ।
कभी आत्म-रक्षा से ही वह ज्योति जगी है
जिससे असत्-अँधेरे की सब शक्ति लगी है
धर धर काँपते । नये युग के उद्गाता

वे हैं जो हैं निपट निरक्षर लेकिन जिनकी
प्राणों की सलकार जानती कभी न रुकना
जिनका आहत मान जानता नेक न मुकना ।
स्पष्ट रूपरेखा है उनको अपने दिन की ।

क्रान्ति उन्हीं लोगों के पास पला करती है,
दुख के तम में जीवन-ज्योति जला करती है ।

धूप

धूप सुन्दर
धूप में
जगरूप सुन्दर
सहज सुन्दर !
व्योम निर्मल
दृश्य जितना
स्पृश्य जितना
भूमि का वैभव-
तरंगित रूप सुन्दर
सहज सुन्दर ।

तरुण हरियाली
निराली शान शोभा
लाल पीले
और नीले
वर्ण वर्ण प्रसून सुन्दर
धूप सुन्दर
धूप में जगरूप सुन्दर !

ओस कण के
हार पहने
इन्द्रधनुषी
छवि बनाये
शास्य तृण
सर्वत्र सुन्दर
धूप सुन्दर
धूप में जगरूप सुन्दर !

सघन पीसी
ऊर्मियों में
बोर
हरियाली
सलोनी
धूमती सरसों
प्रकम्पित वात से
अपरूप सुन्दर
धूप सुन्दर !

मौन एकाकी
तरंगें देखता हूँ
देखता हूँ
यह अनिर्वचनीयता
बस देखता हूँ
सोचता हूँ
क्या कभी
मैं पा सकूंगा
इस तरह
इतना तरंगित
और निर्मल
आदमी का रूप सुन्दर !
धूप सुन्दर
धूप में जगरूप सुन्दर !
सहज सुन्दर ।

शब्द

शब्दों में उन अर्थों को मैं कैसे लाऊँ
जो आमों की टहनी टहनी में फल बन कर
झूल रहे हैं, जंगल में देखा है तन कर
सिंह किस तरह चलता है, किस विधि से पाऊँ
घरती का सा धैर्य, हगों में व्योम बसाऊँ
फिर यह छवि उरेहता जाऊँ, मन से छन कर
रूप और से और बनेंगे, तन मन धन कर
कैसे उसको मूर्त बनाऊँ और सजाऊँ ।

मुखको जीवन की मुद्राएँ घेर रही हैं
जल थल नभ में प्राणों की अगणित धाराएँ
प्रबहमान हैं—प्रकृति और मानव-कृति मिलकर
रूप जगत् का अपनी आँखों हेर रही हैं,
सृष्टि पदों की साक्षी हैं नभ की ताराएँ,
अर्थ और भी खिलते हैं भावों में खिल कर ।

शंकर शैलेन्द्र

जीत में यकीन कर

तू जिम्दा है तो जिन्दगी की जीत में यकीन कर
अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला जमीन पर !

ये गम के और चार दिन, सितम के और चार दिन
ये दिन भी जाएंगे गुजर, गुजर गये हजार दिन
सुबह ओ' शाम के रंगे हुए गगन को चूम कर
तू सुन जमीन गा रही है कब से झूम झूम कर
तू आ मेरा सिंगार कर तू आ मुझे हसीन कर !

हमारे कारवाँ का मंजिलों को इन्तज़ार है
यह आँधियों की, बिजलियों की, पीठ पर सवार है
तू आ कदम मिला के चल, चलेंगे एक साथ हम
मुसीबतों के सर कुचल, बढ़ेंगे एक साथ हम
कभी तो होगी इस चमन पर बहार की नज़र !

टिके न टिक सकेंगे भूख रोग के स्वराज ये
जमी के पेट में पली अगन, पले हैं जलजले
बुरी है आग पेट की, बुरे हैं दिज्ञ के दाग ये
न दब सकेंगे एक दिन बनेंगे इन्क़लाब ये
गिरेंगे जुल्म के महल, बनेंगे फिर तवीन घर !

शील

भाई का पत्र

चिट्ठी आई भाई की कुछ रुपया भेजो
पीछे घर गिर गया नहीं है आगे छप्पर
मुश्किल में है जान, लगी हैं आँखें छत पर
जाने कब गिर जाय मुझे खिसक रही हैं
तुम बस रहे विदेश, रखे छाती पर पत्थर ।
कभी न लिखता पत्र लिख रहा लाचारी में
जो कुछ भी था बचा न अबकी बीमारी में
बाकी पड़ा लगान न अबकी धान बो सका
पूरा होगा साल न खेतों की यारी में ।
जंगल बेच जमींदारों ने रात संजोई
रह जाती है ईधन बिन अन्नपकी रसोई ।
पुरखों की जादाद कल्ले क्या सर पर रख कर
रुपया कर्ज-उधार नहीं जब देता कोई ।
सोचा-समझा खूब, बहुत मन को समझाया
बेच रहा हूँ नीम, द्वार की शीतल छाया ।
गयी चैत की फसल बेबसी के घेरे में
निगल गया खलिहान, न घर में दाना आया ।
ऐसी हालत में बोलो क्या खर्चे-खायें ?
कब तक छयोड़ा ले ले कर परिवार जिलायें
डपट रहा दुष्काल जिन्दगी की चिन्ता है
किस घरती पर रहें, कहाँ पर पैर जमायें ?

पिछली बार गिरा जो धीला फिर न उठ सका
चला गया सुरघाम हाथ साथी मेहनत का ।
माँग-चाँग कर बैल बीज घरती में डाले
पर हो गये अनाथ लगा खेती को झटका
बिन बैलों की काश्त, स्वप्न में मोर नचाना
बिन सरगम का गीत भूख में गाल बजाना ।
तुम तो कवि हो जरा कल्पना कर के देखो
छोड़ दिया है यहाँ जवानी ने इठलाना ।
लिखना तो है बहुत, नहीं कुछ भी लिख पाता
देखें दिन का फेर अभी क्या क्या दिखलाता
विपदा आयी, पास नहीं है साथी कोई
पैसा ही बन गया आज नाते का नाता ।
बिना दवा के मरी अभी कंचन की साली
लखतपशाह दाब बैठे हैं लोटा-थाली
कुछ लोगों को छोड़ गाँव का गाँव दुखी है
अबकी अपने गाँव न आयेगी दिवाली ।
इसुरी पंडित बुरी तरह हैं काल-गाल में
उनके यहाँ पड़ गया डाका अभी हाल में
दिन में लूटे गये फूटबस गाँव न सनका
डूब मरी सुखदा खेरे के देवताल में ।
चक-चक हुई हुई पंचों में कानाफूसी
शोर हुआ तो कहा पुलिस ने, ये हैं रूसी ।
जोर-जुल्म की मार गाँव में हिला न तिनका
सुखदा की सम्पत्ति उड़ गयी जैसे भूसी ।
उल्टे रोजे पड़े, फँसे इसुरी के नाना
न्याय कहाँ हुक्काम जहाँ लेते नजराना ।
क्या बतलायें धनियों की सरकार हो गयी
रचते पंच प्रपंच, बनी पंचायत थाना ।

भरा सन्त बेमौत लुट गया सोना भुर्जी
 जालिम ने सब खेल लगा रक्खे थे फर्जी
 दौड़ धूप की खूब मगर कुछ काम न आयी
 दीमक के मुँह लगी न्याय की थाती, अर्जी ।
 किसकी किसकी कहें गाँव के बुरे हाल हैं
 खदरधारी पंचायत में गोलमाल है ।
 झूठों के सरताज, कसम गांधी की खाते
 भूखों मरें किसान मगर नेता निहाल हैं ।
 प्रीतम, तुलाप्रकाश, नन्दसिंह, जोधाभाई
 अपना अपना दाँव लगा बन गये सभाई
 सागरसिंह, घनश्यामसिंह ने बोले बदले
 दूध मिनिस्टर का साला !—बन गया जमाई
 तबसे उनके रामराज्य का ठाटबाट है
 अत्याचारों में बढ़ती है लूट-पाट है
 अबकी मंडल कांग्रेस में संघी आये
 विजयी विश्व तिरंगा प्यारा अब सपाट
 कुछ दिन पहले सागर ने ध्रुव को पिटवाया
 लाये थे वह यहाँ लाल शंभे की माया
 सुक-सुक हुई, कलेजे घड़के, उठीं भुजायें
 लेकिन अब है पुलिस-राज-आतंक समाया ।
 दुख दे रहा सुराज किसान कराह रहे हैं
 भइया फिर अब तुम्हें यहाँ सब चाह रहे हैं ।
 तड़प रहे हैं लोग, घोर बेचैनी फेली
 उठने को तूफान, अभी कुछ थाह रहे हैं ।
 थोड़ा लिखा, समझना ज्यादा, भूल न करना
 रुपया देना भेज, मुसीबत देती धरना ।

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

पर तुम्हें भूला नहीं हूँ

मैं बड़ा ही जा रहा हूँ पर तुम्हें भूला नहीं हूँ ।

चल रहा हूँ क्योंकि चलने से थकावट दूर होती
 जल रहा हूँ क्योंकि जलने से तमिन्ना दूर होती
 गल रहा हूँ क्योंकि हल्का बोझ हो जाता हृदय का
 ढल रहा हूँ क्योंकि ढल कर साथ पा जाता समय का
 चाहता तो था कि एक लूँ पार्श्व में क्षणभर तुम्हारे
 किन्तु अगणित स्वर बुलाते हैं मुझे बाँहें पसारे
 अनसुना करना उन्हें भारी प्रवंचन कापुरुषता
 मुँह दिखाने योग्य रक्खेगी न मुझको स्वार्थपरता
 इसलिए ही आज युग की देहली को लाँघ कर मैं
 पथ नया अपना रहा हूँ, पर तुम्हें भूला नहीं हूँ ।

ज्ञात है कब तक टिकेगी यह घड़ी भी संक्रमण की
 और जीवन में अमर है भूख तन की, भूख मन की
 विश्व-व्यापक वेदना केवल कहानी ही नहीं है
 एक जलता सत्य केवल आँख का पानी नहीं है
 शान्ति कैसी ? छा रही वातावरण में जब उदासी
 तृप्ति कैसी ? रो रही सारी घरा ही आज प्यासी
 ध्यान तक विश्राम का पथ पर महान अनर्थ होगा
 रिण न युग का दे सका तो जन्म लेना व्यर्थ होगा

इसलिए ही आज युग की आग अपने राग में भर
 गीत नूतन गा रहा है, पर तुम्हें भूला नहीं है।
 सोचता हूँ आदिकवि क्या दे गये हैं हमें धाती
 क्रौंचिनी की वेदना से फट गयी थी हाथ छाती
 जबकि पक्षी की व्यथा से आदिकवि का व्यथित अन्तर
 प्रेरणा कैसे न दे कवि को मनुज-कंकाल जर्जर ?
 अन्य मानव और कवि में है बड़ा कोई न अन्तर
 मात्र मुखरित कर सके मन की व्यथा, अनुभूति के स्वर
 वेदना असहाय हृदयों में उमड़ती जो निरन्तर
 कवि न यदि कह दे उसे तो व्यर्थ वाणो का मिला वर
 इसलिये ही मूक हृदयों में घुमड़ती विवशता को
 मैं सुनाता जा रहा हूँ पर तुम्हें भूला नहीं हूँ।

आज शोषक-शोषितों में हो गया जग का विभाजन
 अस्थियों की नींव पर अकड़ा खड़ा प्रासाद का तन
 घातु के कुछ ठीकरों पर मानवी-संज्ञा-विसर्जन
 मोल कंकड़-पत्थरों के बिक रहा है मनुज जीवन
 एक ही बीती कहानी, जो युगों से कह रहे हैं
 वज्र की छाती बनाये सह रहे हैं, रह रहे हैं
 अस्थि-मज्जा से जगत् के मुख-सदन गढ़ते रहे जो
 तीक्ष्णतर असिघार पर हँसते हुए बढ़ते रहे जो
 अश्रु से उन धूलिधूसर शूलजर्जर क्षत पगों को
 मैं भिगोता जा रहा हूँ, पर तुम्हें भूला नहीं हूँ।

आज जो मैं इस तरह आवेश में हूँ, अनमना हूँ
 यह न समझो मैं किसी के रक्त का प्यासा बना हूँ
 सत्य कहता हूँ पराये पैर का काँटा कसकता
 भूल से चींटी कहीं दब जाय तो भी हाथ करता

पर जिन्होंने स्वार्थवश जीवन विषाक्त बना दिया है
 कोटि-कोटि बुभुक्षितों का कीर तलक छिना लिया है
 'लाभ-शुभ' लिख कर जमाने का हृदय चूसा जिन्होंने
 और कल बंगाल वाली लाश पर धूका जिन्होंने
 बिलखते शिशु की व्यथा पर दृष्टि तक जिनने न फेरी
 यदि क्षमा कर दूँ उन्हें धिक्कार माँ की कोख मेरी
 चाहता हूँ ध्वंस कर देना विषमता की कहानो
 हो सुलभ सबको जगत में वस्त्र-भोजन अन्न-पानी
 नवभवन निर्माणहित में जर्जरित प्राचीनता का
 गढ़ ढहाता जा रहा है, पर तुम्हें भूला नहीं हूँ

चली जा रही है बढ़ी लाल सेना

तना वक्ष, जबालामुखी श्वास में भर
 लुटेरों की दुनियाँ पे बन के बवंडर
 समय की डगर पर प्रलय के क्रदम धर

चली जा रही है बढ़ी लाल सेना।

प्रलय के, सृजन के सभी साज सजकर
 ढहे खंडहरों का क्षणिक मोह तजकर
 विजय वेश आँखें लगी रक्त ध्वज पर

चली जा रही है बढ़ी लाल सेना।

युगों की सड़ी रुढ़ियों को कुचलती
 जहर की लहर सी लहरती मचलती
 अंधेरी निशा में मशालों सी जलती

चली जा रही है बढ़ी लाल सेना।

शुद्ध की निशा में उदित पूर्णिमा सी
जिघर डग, उधर फट गई कालिमा सी
भित्तिज पर उषा की तरुण लालिमा सी

चली जा रही है बड़ी लाल सेना ।
चरण-चिह्न में छोड़ती युग-निशानी
नया दिन, नया वेश, नूतन कहानी
चले हूमती ज्यों उमड़ती जवानी
चली जा रही है बड़ी लाल सेना ।

हुई मीन गिरजों की टन टन पुकारें
कंपी मंदिरों की पुरानी दीवारें
ठगी सी खड़ी मसजिदों की मीनारें
चली जा रही है बड़ी लाल सेना ।

गरजती कभी बिजलियों सी चमकती
समंदर उबलते धरित्री धँसकती
गरम खून से लाल इतिहास लिखती
चली जा रही है बड़ी लाल सेना ।

लगे गुंजने शोषितों के तराने
'चले आज हम स्वप्न सच्चे बनाने'
रहेगी ? रहेगी ! कहाँ कौन जाने ?
चली जा रही है बड़ी लाल सेना ।

साँसों का हिसाब

तुम, जो जीवित कहलाने के हो आदी
तुम, जिनको दफना नहीं सकी बरबादी
तुम, जिनकी धड़कन में गति का बंदन है

तुम, जिनकी कसकन में चिर संवेदन है
तुम, जो पथ पर अरमान भरे आते हो
तुम, जो हस्ती की मस्ती में माते हो
तुम, जिनने अपना रथ सरपट दौड़ाया
कुछ क्षण हाँफि, कुछ साँस रोककर गया
तुमने जितनी साँसें तानी-मोड़ी हैं
तुमने जितनी साँसें खींची-छोड़ी हैं
उनका हिसाब दो और करो रखवाली
कल आने वाला है साँसों का माली ।
कितनी साँसों की अलकें धूल-सनी हैं ?
कितनी साँसों की पलकें फूल-बनी हैं ?
कितनी साँसों को सुनकर मूक हुए हो ?
कितनी साँसों को गिनना चूक गये हो ?
कितनी साँसें दुविधा के तम में रोई ?
कितनी साँसें जमुहाई लेकर खोई ?
जो साँसें, सपनों में आबाद हुई हैं
ओ साँसें सोने में बरबाद हुई हैं
जो साँसें साँसों से मिल बहुत लजाईं
जो साँसें अपनी होकर बनी पराईं
जो साँसें साँसों को छू कर गरमाईं
जो साँसें सहसा विछुड़ गईं, ठंडाईं
जिन साँसों को ठग लिया किसी छलिया ने
उन सबको आज सहेजो इस डलिया में
तुम इनको निरखो परखो या अबरेखो
फिर साँस रोककर उलट पुलट कर देखो
क्या तुम इन साँसों में कुछ रह पाये हो ?
क्या तुम इन साँसों से कुछ कह पाये हो ?
क्या तुम साँसों के स्वर में बह पाये हो ?

क्या इनके बल पर सब कुछ सह पाये हो ?
 इनमें कितनी हाथों में गह सकते हो
 इनमें किन किन को अपनी कह सकते हो ?
 तुम चाहोगे टालना प्रश्न यह जी भर
 शायद हँस दोगे मेरे पागलपन पर
 कबि तो अदना बातों पर भी रोता है
 पगले साँसों का भी हिसाब होता है ?
 कुछ हृद तक तुम भी ठीक कह रहे लेकिन
 साँसें हैं केवल नहीं हवाई स्पंदन
 इनमें चिनगारी, नमी और कुछ घड़कन
 जिससे चल पड़ता इस्पातों का स्पंदन ।
 यह जो बिराट् में उठा बवंडर जैसा
 यह जो हिमगिरि पर है प्रलयंकर जैसा
 इसके व्याघातों को क्या समझ रहे हो ?
 इसके संघातों को क्या समझ रहे हो ?
 यह सब साँसों की नई शोध है भाई
 यह सब साँसों का मूक रोध है भाई
 जब ये अन्दर अन्दर घुटने लगती हैं
 जब ये ज्वालाओं पर चढ़कर जगती हैं
 तब होता है भूकम्प शृङ्ग हिलते हैं
 ज्वालामुखियों के वक्ष फूट पड़ते हैं
 पौराणिक कहते दुर्गा मचल रही है
 आगन्तुक कहते दुनिया बदल रही है ।
 यह साँसों के सम्मिलित स्वरों की बोली
 कुछ ऐसी लगती नई नई अनमोली
 पहचान-जान में समय लगा करता है
 पग-पग नूतन इतिहास जगा करता है
 जन जन का पारावार बहा करता है

जो बनता है दीवार, ढहा करता है
 सागर में ऐसा ज्वार उठा करता है
 तल के मोती का प्यार लुटा करता है !
 साँसें शीतल समीर भी बड़वानल भी
 साँसें हैं मलयानिल भी दावानल भी
 इसलिये सहेजो इनको तुम चुन-चुन कर
 इसलिये सँजोओ इनको तुम गिन-गिन कर
 अब तक गफ़लत में जो खोया सो खोया
 अब तक ऊसर में जो बोया सो बोया
 अब तो साँसों की फसल उगाओ भाई
 अब तो साँसों के दीप जलाओ भाई
 तुमको चन्दा से चाव हुआ तो होगा
 तुमको सूरज ने कभी छुआ तो होगा
 उसकी ठण्डी गरमी का क्या कर डाला ?
 जलनिधि का आकुल ज्वार कहाँ पर पाला ?
 मध्यल की उड़ती बालू का लेखा दो ।
 प्यासे अघरों की अकुलाई रेखा दो ।
 तुमने पी ली कितनी संध्या की लाली ?
 ऊषा ने कितनी शबनम तुममें ढाली ?
 मधुरितु को तुमने क्या उपहार दिया था ?
 पतझर को तुमने कितना प्यार किया था ?
 क्या किसी साँस की रगड़ ज्वाल में बदली ?
 क्या कभी वाष्प-सी साँस बन गई बदली ?
 फिर बरसी भी तो कैसी कितनी बरसी ?
 चातकी बिचारी फिर भी कैसी तरसी ?
 साँसों का फोलादी पौष भी देखा ?
 कितनी साँसों ने की पत्थर पर रेखा ?
 जितनी भी साँसें पथ के रोड़े बिनतीं

हर साँस-साँस की देनी होगी गिनती
 तुम इनको जोड़ो बैठ कहीं एकाकी
 बेकार गई जो उनको कर दो बाकी
 जो शेष बचें उनका मोजान लगा लो
 जीवित रहने का सब अभिमान जगा लो
 मृग से जीवित का अब अनुपात बता दो,
 साँसों की सार्थकता का मुझे पता दो !
 लज्जित क्यों होने लगा गुमान तुम्हारा ?
 क्या कहता है बोसो ईमान तुम्हारा ?
 क्या समझे थे तुम सचमुच ही जीते हो ?
 तुम खुद ही देखो भरे या कि रीते हो
 जीवन की लज्जा है तो अब भी चेतो
 जो जंग लगी उसको खराद पर रेतो,
 जितनी बाकी हैं सार्थक उन्हें बना लो
 पछताओ मत आगे की रकम धुना लो
 अब काल न तुमसे बाजो पाने पाये
 अब एक साँस भी व्यर्थ न जाने पाये
 तब जीवन का सच्चा सम्मान रहेगा,
 आने वाली पीढ़ी को ज्ञान रहेगा
 यह जिया न अपने लिए मौत से जीता
 यह सदा भरा ही रहा न दुलका, रीता

'नीरज'

साँसों के मुसाफ़िर के नाम

इसको भी अपनाता चल
 उसको भी अपनाता चल
 राही हैं सब एक डगर के सब पर प्यार लुटाता चल !

बिना प्यार के चले न कोई, आँधी हो या पानी हो
 नई उमर की चूनरी हो या कमरी फटी पुरानी हो
 तपे प्रेम के लिए धरित्री, जले प्रेम के लिए दिया
 कौन हृदय है नहीं प्यार की जिसने की दरबानी हो
 तट तट रास रचाता चल
 पनघट पनघट गाता चल
 प्यासी है हर गागर, दिल का गंगाजल छलकाता चल !
 कोई नहीं पराया सारी धरती एक बसेरा है
 इसका खेमा पश्चिम में तो उसका पूरब डेरा है
 श्वेत बरन या श्याम बरन हो, सुन्दर या कि असुन्दर हो
 सभी मछलियाँ एक ताल की, क्या मेरा, क्या तेरा है
 गलियाँ गाँव गुंजाता चल
 पथ पथ फूल बिछाता चल
 हर दरवाजा राम दुआरा सबको शीश झुकाता चल !

हृदय हृदय के बीच खाइयाँ लहू बिछा मैदानों में
 घूम रहे हैं युद्ध सड़क पर, शान्ति छिपी शमशानों में

जंजीरें कट रहीं, मगर आज्ञाद नहीं इन्सान अभी
 दुनियाँ भर की खुशी क़ैद है चाँदी-जड़े मकानों में
 सोई किरन जगाता चल
 रूठी सुबह मनाता चल
 प्यार नकाबों में न बन्द हो, हर घूँघट खिसकाता चल !

नयन नयन तरसैं सपनों को, आँचल तरसैं फूलों को
 आँगन तरसैं त्यौहारों को, गलियाँ तरसैं झूलों को
 किसी होठ पर बजे न गंशी, किसी हाथ में बोन नहीं
 उम्र समुन्दर की दे डाली किसने चन्द बबूलों को
 बिखरे तार मिलाता चल
 समतल धरा बनाता चल
 इक-रंग बने दुरंगी दुनियाँ, ऐसा रंग उड़ाता चल !

बिकाबिकी सब ओर मचा है आने औ' दो आनों पर
 अस्मत बिके दुराहों पर तो प्यार बिके दूकानों पर
 डगर डगर पर मन्दिर मस्जिद, क़दम क़दम पर गुणद्वारे
 भगवानों की बस्ती में है, जुल्म बहुत इन्सानों पर
 खिड़की हर खुलवाता चल
 साँकल हर कटवाता चल
 इस पर भी उजियार न हो तो दिल का दिया जलाता चल !

नील की बेटो के नाम

रात का है वक्त, चारों ओर छाया है घटाएँ
 साँप सी फुफकारती है चल रही ठण्डी हवाएँ ।

आसमाँ पर एक तारा तक नज़र आता नहीं है
 जुल्म का जैसे जमीं पर दीप जल पाता नहीं है !
 है लगी रिमसिम झड़ी दीवार कच्ची टूटती है
 साँस जनयुग में कि पूँजीवाद की ज्यों छूटती है ।
 एक सन्नाटा कि हर आबाज हर अहसास चुप है
 एटमी विष चाट ज्यों हिरोशिमा की लाश चुप है ।
 बोल उठता है कहीं लेकिन कभी कोई पपीहा
 दे रहा ज्यों प्यार को आवाज भारत का मसीहा ।
 बंद के आघात को यूँ सह रही है रातरानी
 सह रही ज्यों गोलियों की मार गोआ की जवानी ।
 हैं पड़े लाखों दरारें भूमि के गोरे बदन में
 जिस तरह लिपटे हुए हैं घाव अलजीरी कफ़न में
 और ऐसे में बिठाये सामने लो थरथराती ।
 नील की बेटो तुझे मैं लिख रहा हूँ प्रेमपाती !
 कौन है, क्या है, बताने की ज़रूरत कुछ नहीं है
 सिर्फ इतना जान कवि है, हर ज़मी मेरी ज़मी है !
 प्रिय मुझे जितना कि भारतवर्ष जो मेरा बतन है
 कम नहीं उससे तनिक प्यारा मुझे तेरा चमन है !
 उस चमन पर ही मगर है आँधियों का आज घेरा
 नील की बेटो बता कैसे न धड़के प्राण मेरा ?
 विश्व भर का आइना जो वह कि शायर का जिगर है
 हो कहीं पर हर हृदय के दर्द की उसको खबर है ।
 अज़नबी तू किन्तु तेरी चाह मुझको जानती है
 मैं न जानूँ पर क़लम मेरी तुझे पहचानती है ।
 और फिर तेरी हसीना नील, गंगा से हमारी
 कर चुकी है बहुत पहले दोस्ती यह सृष्टि सारी !
 वे पिरामिड दूह वे ममियाँ वही सदियों पुरानी
 ताड़ की पाँतें खजूरों की क़तारे आसमानी

काफ़िले वे, ऊँट वे, वे घंटियाँ वंशो विजन की
 प्यास रेगिस्तान की गर्मी बगूलों के हवन की ।
 मस्जिदें जिनकी अजानों से सुबह जग में हुई है
 वे रूई के फूल पाकर रेत जिनको हँस गयी है ।
 सभ्यता इनसे हजारों साल पहले मिल चुकी है
 वह कली है कौन घर तेरे नहीं जो खिल चुकी है ।
 जबकि पश्चिम की अकल अँगड़ाइयाँ ही ले रही थी
 तब खड़ी तू सर्व मुर्दों को जवानी दे रही थी ।
 जाति यूरोप की न ढँकना देह तक जब जानती थी
 आदमी का वस्त्र तब इन्सानियत तू मानती थी
 पर उसी इन्सानियत पर डालने को आज डाका
 कुछ लुटेरे मिल तुझे दिखला रहे मय गोलियों का ।
 पर न घबराना कि तेरा पुत्र नासिर सा जवाँ है
 साथ सारा एशिया है, साथ सब हिन्दोस्ता है !
 हाथ जो तुझ पर उठेगा हम उसे झकझोर देंगे
 जंग की जो भी करेगा बात वह मुँह तोड़ देंगे !
 चोर जो आज्ञादियों का, चोर वह ईमान का है
 शत्रु है जो शान्ति का, वह शत्रु हर इन्सान का है !
 हम बता देंगे कि कितनी नीम की गहरी सतह है
 हम बता देंगे कि कैरों में न चोरों को जगह है !
 हम बता देंगे कि धरती पौँड में बँटती नहीं है
 धार पानी की कभी तलवार से कटती नहीं है !
 मिस्र के ऊपर हुआ हर वार हम पर वार होगा
 मिस्र का त्यौहार हर आजाद का त्यौहार होगा !
 क्योंकि पानी नील का नल कूप का पानी नहीं है
 अशक रेगिस्तान का है और बेमानी नहीं है ।
 ओर बस्ती मिस्र की मजदूर की है एक बस्ती
 हो गई मिट्टी जहाँ फ़ारुक सी हर एक हस्ती ।

यह जली बस्ती अगर सारा जहाँ जलने लगेगा
 फ्रांस से लन्दन तलक हर दर-मर्का जलने लगेगा !
 मिस्र उठ औ' बाँध अपने बाँध तू बेखौफ़ होकर
 बीन सूरज चाँद के काने किरन के बीज बोकर
 हल चला ऐसे कि रेगिस्तान सारे लहलहायें
 वे नये इन्सान गढ़ ममियाँ कि सोई जाय जायें !
 फिर चले वे काफ़िले तहज़ीब के तेरे चमन से
 पूछती दुनिया फिर जिनका पता भू से गगन से ।
 नील फिर सहराय सीना स्वेज का इतना बड़ा हो ।
 जग दिखे छोटा अगर आकर जहाजों में खड़ा हो ।
 है जमाने की नज़र बदली, हवा बदली हुई है
 टूटने को खुद-बखुद जंज़ीर हर मचली हुई है ।
 है जगा इन्सान करवट ले रही है धूल रानी
 खिल रहे हैं फूल जनता कर रही है बागवानी !
 नागिनी हर आँख उगते सूर्य पर ठहरी हुई है
 हँस रहा आँगन मगन हर व्याहली देहरी हुई है ।
 हर अधर पर गीत हर घूँघट सितारों से जड़ा है
 हर गली डोली सजी, हर द्वार पर दूल्हा खड़ा है !
 हर चमन आबाद खेतों बीच हल-हँसिया पड़ा है
 कह रहा है ध्वंस से निर्माण दुनिया में बड़ा है ।
 आदमी के खून की अब हाट जुड़ सकती नहीं है
 शान्ति की दीवार तोपों से उखड़ सकती नहीं है
 देखना है जुल्म की रफतार बढ़ती है कहाँ तक
 देखना है बमों की बीछार बढ़ती है कहाँ तक
 देखना है डालरी झंकार में कितना असर है
 उम्र नफ़रत की बढ़ी या प्यार की ज्यादा उमर है !
 नील की बेटी न घबराना समझ से काम लेना
 घर उठे तूफ़ान, हिन्दुस्तान को आवाज़ देना !

अब युद्ध नहीं होगा

मैं सोच रहा हूँ अगर तीसरा युद्ध छिड़ा
 इस नयी सुबह की नयी फ़सल का क्या होगा ?
 मैं सोच रहा हूँ गर ज़मीन पर खून उगा
 मामूम हलों की चहल पहल का क्या होगा ?
 ये हँसते हुए गुलाब, महकते हुए चमन
 जादू बिखराती हुई रूप की ये कलियाँ
 ये मस्त झूमती हुई बालियाँ धानों की
 ये शोख सजग शरमाती गेहूँ की गलियाँ
 गदराते हुए अनारों की यह मन्द हँसी
 यह पैंगे बड़ा बड़ा अभियों का इठलाना
 यह नदियों का लहरों के बाल खोल चलना
 यह पानी के सितार पर झरनों का गाना
 मैनाओं की नटखटी, ढिठाई तोतों की
 यह शोर मोर का, भौर-भृङ्ग की यह गुनगुन
 बिजली की कड़क-तड़क, बदली की चटक-मटक
 यह जोत जुगनुओं की, यह क्षिगुर की झुन-झुन
 फ़िलकारी भरते हुए दूध से ये बच्चे
 निर्भीक उछलती हुई जवानों की टोली
 रति को शरमाती हुई चाँद सी ये शकलें
 संगीत चुराती हुई पायलों की बोली
 आल्हा की ललकार, थाप यह ढोलक की
 सूर्रा मीरा की सीख, कबीरा की बानी
 पनघट की भरी गगरियों की यह छेड़-छाड़
 राधा की कान्हा से छुप छुप आनाकानी
 क्या इन सब पर खामोशी मौत बिछा देगी
 क्या धुंध-धुआँ बनकर सब जग रह जायेगा ?

क्या कूकेगी कोयलिया कभी न बगिया में
 क्या पपीहा फिर न पिया को पास बुलायेगा
 मैं सोच रहा : युग जो इतिहास लिख रहा
 क्या रक्त धुलेगा उसकी सारी स्याही में ?
 क्या लाशों के पहाड़ पर सूरज उतरेगा ?
 क्या चाँद सिसकियाँ लेगा ध्वंस-तबाही में ?
 क्या खिजा चाट लेगी शबाब इन फूलों का
 क्या घूप अंधेरे की दासी हो जायेगी ?
 क्या क्रान्ति पहन लेगी जंजीरों सोने की
 क्या शान्ति मरघटों में छिपकर सो जायेगी ?
 क्या पी जायेगा रेगिस्तान नर्मदा को
 क्या गङ्गा का सैलाब भाप बन जायेगा ?
 झुक जायेगा क्या शीश हिमालय योगी का
 विन्ध्याचल में पतझार दुबारा आयेगा ?
 मैं सोच रहा हूँ फूल रहा जो खेतों में
 उस बचपन को गोद मिलेगी क्या संगीनों की ?
 मिट कर मिट्टी के सर पर जो धर रहा ताज
 उस श्रम को उम्र मिलेगी टैंक-मशीनों की ?
 जो अभी अभी सिन्दूर दिये घर आयी है
 जिसके हाथों की मेंहदी अब तक गीली है
 घूँघट से बाहर आ न सकी है अभी लाज
 हल्दी से जिसकी चूनर अब तक पीली है
 क्या वह अपनी लाइली बहिन साड़ी उतार
 चूँड़ियाँ बेचेगी अपनी जाकर बाजारों में ?
 जिसकी छाती से फूटा है मातृत्व अभी
 वह मां क्या दफ़नायेगी दूध मजारों में ?
 क्या गोली की बौछार मिलेगी सावन को ?
 क्या डालेगा विनाश झूला अमराई में ?

क्या उपवन की डालों में फूलेंगे अंगार ?
 क्या घृणा बजेगी भीरों की शहनाई में ?
 असहाय बुढ़ापा तड़पेगा क्या मरवट में ?
 बारूद करेगी क्या शृङ्गार जवानों का ?
 क्या मानवता पर विजयी दानवता होगी ?
 क्या होगा अन्त पुराना नई कहानी का ?
 जब घायल सीना लिए एशिया तड़पेगा
 तब बाल्मीकि का धैर्य न कैसे डोलेगा ?
 भूखी कुरान की आयत जब दम तोड़ेगी ?
 तब क्या न खून फिरदीसी का फिर खोलेगा ?
 सुन्दरता की जब लाश सड़ेगी सड़कों पर
 साहित्य पड़ा महलों में कैसे सोएगा ?
 जब क्रैद तिजोरी में रोटी हो जायेगी
 तब क्रान्ति बोझ कैसे न पसीना बोएगा ?
 हँसिये का जंग छुड़ाने में रत है किसान
 है नयी नोक दे रहा मजूर कुदालो को
 नभ बसा रहा है नए सितारों की बस्ती
 भू लिए गोद में नए खून की लाली को ।
 बड़ बुका बहुत रथ आगे अब निर्माणों का
 बम्बों के दलदल से अवरुद्ध नहीं होगा
 है शान्ति शहीदों का पड़ाव हर मंजिल पर
 अब युद्ध नहीं होगा अब युद्ध नहीं होगा !

वीरेन्द्र मिश्र

जिन्दगी गा रहा हूँ

गीत में विश्वास है जो दे रहा मुझको सहारा
 गीत में है दर्द दिल का, है नहीं जिसका किनारा
 गीत में उल्लास है वह जोकि सपनों ने निहारा
 गीत में है मीत मन का, गीत ने जिसको सँवारा
 गीत मेरा मीत, मुझसे तुम अलग उसको न देखो
 जबकि एकाकार दोनों एक के यश को न देखो
 शोकिया लिखता नहीं हूँ, गीत है कर्तव्य मेरा
 गीत है गत का कथानक गीत है भवितव्य मेरा

जन्म से मुझको मिली है जो विरासत में निशानी
 वह निशानी गा रहा हूँ, मन नहीं बहला रहा हूँ !

जब मिली अनुभूति मुझको, गीत फूटा, विश्व झूमा
 जान पाया कौन पर मैं, कहाँ भटका, कहाँ घूमा
 कब तड़प कर रह गया, कब आह की, कब डगमगाया
 कब नयन के नीर में डूबा कि कब वह भी न आया
 एक रचना तब हुई, जब शूल चुभ बैठा चरण में
 एक रचना तब हुई, जब शूल को देखा सुमन में
 गीत है तस्वीर मन बहलाव का साधन नहीं है
 गीत है अनिवार्य जीवन-क्रम, मनोरंजन नहीं है

क्रैद थी जो युग-युगों से कन्दराओं-खाइयों में
 मौन वाणी गा रहा हूँ, मन नहीं बहला रहा हूँ !

जिन्दगी से दूर जाकर जो कला को है सजाता
 मैं नहीं वह हूँ, मुझे वह गीत लिखना है न आता
 गीत सुनना चाहते हो तो उतर आओ घरा पर
 चैन से बैठो नहीं, समझो जरा, क्या चीखता स्वर
 किस तरह यह भाव आया, क्यों कहाँ से पंक्ति आयी
 किस जलन ने ताप ने है छन्द की झाँकी सजाई
 'वाह' तुमसे तब निकलती 'आह' जब करता पसीना
 गीत-कारीगर सुखा शोणित, तुम्हें देता नगीना

इस नगीने की चमक की, गीत के भोले श्रमिक की
 मैं कहानी गा रहा हूँ, मन नहीं बहला रहा हूँ !

लेखनी जब हाथ में है मैं किसी से क्यों डरूँगा
 आज मैं अपना स्वयं ही घर बनाऊँगा, रहूँगा
 तुम कहोगे 'यह कहो तुम' मैं कहूँगा 'अब नहीं यह'
 जबकि मैं हूँ जाग बैठा, तब नहीं यह तब नहीं वह
 हाथ में परचम लिये हूँ आँख में शत्रुनम भरे
 प्राण में विश्वास जीवित, कंठ में सरगम भरे
 भोर का वातावरण है, गा रहा हूँ मैं प्रभाती
 दूर डलती रात की है मन्द सी पदचाप आती

आज जो संघर्ष है, वह है सबेरे की जवानी
 मैं जवानी गा रहा हूँ, मन नहीं बहला रहा हूँ !

शान्ति बाहर भटकती है युद्ध के मठ से निकलकर
 प्रेत देवी-देवता बन नाचते, चोला बदल कर
 बज रहे घंटे कि शोषण दूर तक देता सुनाई
 द्वार प्रहरी डोलता है बाँध जनता की कमाई
 पुण्य-मंदिर पाप पुजता और बाहर घोष होता
 आरती इसकी न होगी, भीड़ में है रोष होता

म्हान जनता को इशारा कर सुलगता न्याय का स्वर
 देश की यह भाग्य-लक्ष्मी है, इसी का स्वर्ण मंदिर
 क्रान्ति-भैरव गूँजता है विश्व ने करवट बदल दी
 दानवी अपने तिमिर के साथ मंदिर छोड़ जश्दी

दूर देहरी से खड़ी है जो सृजन की मुक्ति देवी
 वह भवानी गा रहा हूँ मन नहीं बहला रहा हूँ !

मेरा देश

अब गाता हूँ

कोई अंधकार की चादर मेरी ओर बढ़ाए ना
 जलता दीप है ये, इससे प्यार मुझको !
 कोई मेरी खुशहाली पर खूनी आँख उठाए ना
 मेरा देश है ये इससे प्यार मुझको !

इसकी मिट्टी में गर्मी है काल की, इसमें ताकत है उठते भूचाल की
 इतिहासों की गाथा इसके मूल में, एक चमकती दुनियाँ इसकी धूल में
 इसके पवन झकोरों में वह प्यास है, सिर्फ़ बहारों को जिसका आभास है
 संझा और सकारे ऐसे हैं कहाँ, सूरज चाँद सितारे ऐसे हैं कहाँ
 श्याम घटा बिजली बरखा मन भावनी, रिमझिम बूँद फुहार चँदनिया सावनी
 आल्हा की हुंकार रमायन की कथा, वृन्दावन के रास गोपियों की व्यथा
 त्यौहारों की घूम दिवाली के दिये, होली के रंगों बिन कोई क्या जिये
 मनीपुरी के नृत्यों की चंचल परी, और भरत नाट्यम पर छिड़ती बाँसुरी
 ये सब मेरी दुनियाँ की आवाज है, इस पर ही तो होता मुझको नाज है
 जो अब गाता हूँ

कोई हँसती गाती राहों में, अंगार बिछाए ना
 पथ की धूल है ये, इसी से प्यार मुझको

कोई मेरी खुशहाली पर खूनी आँख उठाए ना
मेरा देश है ये, इससे प्यार मुझको !

झूमर हँसली पायल नूपुर रागिनी, काजल मेंहदी म्हावर क्वारी चांदनी
शुभ शकुनों के मंगल-कलश दुआर पर, अनब्याहे दग उठते बदनवार पर
और एक दिन जाती घर से लाडली, कुमकुम की डोली में चम्पा की कली
देश कहीं परदेश कहीं किसकी लगन किसकी ममता डोरी मन किसमें मगन
और एक दिन संघर्षों की राह पर, जाता है परिवार बिलखता आह पर
साध चली शमशान, उमंगों पर कफ़न प्यासे मनवा प्यासे ही हो गये दफ़न
लेकिन इसका अर्थ नहीं होता मरण, मुझको जाना है न किसी की भी शरण
हंसी उड़ाने वाले जाते भूल हैं, मेरे मरघट में भी उगते फूल हैं
इन चरणों में अब भी गति की प्यास है, इन अक्षरों पर तो अब भी उल्लास है
लो अब गाता हूँ

कोई अंधकार की चादर मेरी ओर बढ़ाए ना

जलता दीप है ये, इससे प्यार मुझको

कोई मेरी खुशहाली पर खूनी आँख उठाए ना

मेरा देश है ये, इससे प्यार मुझको !

कौन गया है रेखाओं को चीर कर, रांगोली से बनी हुई तस्वीर पर
बासंती मलयानिल खुलकर नाचती, राग भरी सी रूपम 'गीतम' बाँचती
संस्कृति की पहली डाली है झूमती, नयी गुलाबी कला जिसे है चूमती
फूल रहे अंबवा, बोझिल अमराइयाँ, मोठी-मोठी पीर भरी अंगड़ाइयाँ
बरखा में बिरही की ममता जागती, हेर-हेर बिरहिन की निदिया भागती
सब अपनी-अपनी प्रेमाओं की याद में, डूबे जाते हैं गहरे अवसाद में
क्वारी हवा गगन को देती छेड़ है, देखो टूट चली खेतों की मेड़ है
वीराने से बादल करता प्यार है, पनघट पर त्रिजली की चीख पुकार है
जीवन की जमुना में जिसकी याद है, उसकी लहरों पर मुरली का नाद है
लो अब गाता हूँ

कोई साँवरिया को उसकी राधा से बिछुड़ाए ना

८४ / प्रगतिशील कविता के मील-पत्थर

लीला धाम है ये, इससे प्यार मुझको

कोई फूलपात की कश्मीरी शबनम उजड़ाए ना

भोगी आँख है ये, इससे प्यार मुझको !

किसी पेड़ को बना नसैनी तैश में, गंध चली आती है नभ के देश में
फिर जैसे अम्बर से झरते फूल हैं, धू की स्वप्नांजलि में जाते झूल हैं
लगता है ये आयी मीरा बावरी, नतित गुंजित जीवित राधा साँवरी
'और सुनो भाई साधो' जुलहा बोलता, दास कबीरा बिष में अमृत धोलता
नभ के पर्दे जलते सूरज दीप से, चले संदेशे इन्द्रराज के द्वीप से
मेघदूत ज्यों कालिदास के राज के, छिड़ते मेघ मल्हार किसी के साज के
तानसेन संग आता बैजू बावरा, सुन जिसको निज सुधबुध खो देती धरा
बरसत नैन हमारे सूर्रा झूमता, चित्रकूट के वन में तुलसी घूमता
गीतकार से कहता मैं तुम भी उठो, झूमो मत पिछली लय में, आवाज दो
लो अब गाता हूँ

कोई मेरे सरगम के पर्दों में आग लगाए ना

मेरा गीत है ये, इससे प्यार मुझको

कोई मरघट के मरुथल में छंदों को दफ़नाए ना

शैरव राग है ये, इससे प्यार मुझको !

सुख का साया हो या हो दुख की बदली, मेरी दुनियाँ औरों से सौ बार भली
तुम भी सुनते होगे इस संदेश को, नयी उमर है मिली पुराने देश को
जाऊँगा अपनी मिट्टी को पूजता, देखूँगा अब नहीं स्वप्न को टूटता
सिर माथे लेना है धरती-धूल को, जिसने सिरजा है मधुवन के फूल को
लेकिन यह क्या होती है आवाज क्या? धुवाँ आग चीत्कार ध्वंस है, राज क्या ?
देशों में होती है खींचातान क्यों ? शीत युद्ध से दुनियाँ है हैरान क्यों ?
मेरे सुख-सपनों पर किसका हाथ है ? क्यों पीछे चलती छाया सौ रात है ?
तोप लगाई है किसने इन्सान पर, एटम गिरना है क्या हिन्दुस्तान पर ?
नहीं, नहीं, मैं नहीं इसे होने दूँगा, मैं अपने सब प्रश्नों के उत्तर लूँगा

प्रगतिशील कविता के मील-पत्थर / ८५

तो अब गाता हूँ

कोई मेरी कंगाली पर अपना महल उठाए ना

ये जो झोपड़ी है, इससे प्यार मुझको

मैंने खींची लक्ष्मण-रेखा कोई पाँव बढ़ाए ना

मेरा देश है ये, इससे प्यार मुझको !

रामावतार त्यागी

अपनी कलम नहीं बेचूँगा

मेरे सपनों को सूली पर लटका दो तुम बड़ी खुशी से
पर मैं बेईमान समय को अपना अहम् नहीं बेचूँगा !

कुछ भी मुझे कहेगी दुनियाँ
लेकिन कायर नहीं कहेगी
मैं न रहूँगा यह तो सच है
पर मेरी आस्था रहेगी

मेरी खुशियों को चाहे जब जिन्दा मरघट में दफना दो,
लेकिन मैं बदचलन पतन को अपना जनम नहीं बेचूँगा ।

दीपक बिक सकता है जिसका
अंतर ज्योतिर्मान नहीं है
पर अंगारे को खरीदना
दुनियाँ में आसान नहीं है

मेरे गीत रहें जीवन भर चाहे कारावास भोगते,
लेकिन मैं गुमराह स्वर्ण को अपनी कलम नहीं बेचूँगा !

दुकानों में होड़ लगी है
ईमानों को खरीदने की
रेगिस्तानों ने ज़िब पकड़ी
उद्यानों को खरीदने की

मेरे दर्पण को यदि सम्भव हो तो खंड खंड कर डालो,
लेकिन मैं तन की इच्छा पर मन का नियम नहीं बेचूँगा !

कल्पित किवदन्तियों जैसी
मेरी जीवन कथा नहीं है
मेरी रचना विज्ञापन के
स्वामी की अनुगता नहीं है
सूनी काल कोठरी में ही सारी उम्र बीता दूँगा मैं,
लेकिन किसी मोह को अपने कवि का धरम नहीं बेचूँगा !

सारी रात जागना होगा

चाँदो की उर्वशी न कर दे,
युग के तप-संयम को खंडित !
भर कर आग अंक में मुझको,
सारी रात जागना होगा ।

सपनों का अपराध नहीं है,
मन को ही भा गई उदासी ।
ज्यादा देर किसी नगरी में,
रुकते नहीं सन्त-संन्यासी ।

जो कुछ भी माँगेंगे दूँगा,
ये सपने तो परम हंस हैं ।
मुझको नंगे पाँव धार पर,
आँखें मूंद भागना होगा ।

गागर क्या है कण्ठ लगाकर,
जल को रोक लिया माटी ने ।

जीवन क्या है-जैसे स्वर को,
बापिस भेज दिया घाटी ने ।

गीतों का दर्पण छोटा है,
जीवन का आकार बड़ा है ।
जीवन की खातिर गीतों को,
अब विस्तार माँगना होगा ।

चुनना है बस दर्द सुदामा,
लड़ना है अन्याय कंस से,
जीवन मरणासन्न पड़ा है,
लालच के विष भरे दंश से ।

गीता में जो सत्य लिखा है,
वह भी पूरा सत्य नहीं है ।
चिन्तन की लछमन-रेखा को,
थोड़ा आज लाँघना होगा ॥

गंगाराम 'पथिक'

शायद कोई तूफ़ान

शायद कोई तूफ़ान मचलने वाला है
युग जीवन का इतिहास बदलने वाला है।

भूले भटके अरमान जहाँ लुट जाते हैं
सपनों के शव पर सौदागर मँडराते हैं
जर्जर जीवन के गायक भारी स्वर लेकर
गाते क्या हैं, मजबूरी को बहलाते हैं
साँसों का सरगम स्वयं घघकती ज्वाला है
तम को मालूम नहीं है, क्या उजियाला है।

घरती के दिल की घड़कन ने बतलाया है
मिट्टी के कण-कण में विद्रोह समाया है
सम्राट्टे की सुनी गलियों से टकरा कर
आतंक प्रलय के दरवाजे तक आया है
पाषाणों का अभिमान पिघलने वाला है
शायद अन्तिम परिणाम निकलने वाला है।

गजानन माधव मुक्तिबोध

मुझे क्रदम-क्रदम पर

मुझे क्रदम-क्रदम पर
चोराहे मिलते हैं
बाँहें फैलाये !

एक पैर रखता हूँ
कि सौ राहें फूटती हैं
व मैं उन सब पर से गुजरना चाहता हूँ
बहुत अच्छे लगते हैं
उनके तजुबे और अपने सपने
सब सच्चे लगते हैं
अजीब-सी अकुलाहट दिल में उभरती है
मैं कुछ गहरे में उतरना चाहता हूँ
जाने क्या मिल जाये !

मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में
चमकता हीरा है,
हर-एक छाती में आत्मा अक्षीरा है,
प्रत्येक सुस्मिति में विमल सदानीरा है,
मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में
महाकाव्य-पीड़ा है
पल-भर मैं सबमें से गुजरना चाहता हूँ,
प्रत्येक उर में से तिर आना चाहता हूँ,

इस तरह खुद ही को दिये-दिये फिरता है,
 अजीब है जिंदगी !
 बेवकूफ बनने के खातिर ही
 सब तरफ अपने को लिये-लिये फिरता है
 और यह देख-देख बड़ा मजा आता है
 कि मैं ठगा जाता हूँ...
 हृदय में मेरे ही
 प्रसन्न-चित्त एक भूर्ख बैठा है
 हँस-हँस कर अश्रुपूर्ण, मत्त हुआ जाता है,
 कि जगत् स्वायत्त हुआ जाता है ।

कहानियाँ ले कर
 और मुझको कुछ देकर ये चौराहे फेसते
 जहाँ जरा खड़े हो कर
 बातें कुछ करता हूँ...
 ...उपन्यास मिल जाते हैं ।
 दुख की कथाएँ, तरह-तरह की शिकायतें,
 अहंकार-विश्लेषण, चारित्रिक आख्यान,
 जमाने के जानदार सूरे व आयतें
 सुनने को मिलती हैं ।

कविताएँ मुस्करा लाग-डांट करती हैं,
 प्यार-बात करती हैं ।
 मरने और जीने की जलती हुई सीढ़ियाँ
 श्रद्धाएँ चढ़ती हैं !

घबराये प्रतीक और मुस्काते रूप-चित्र
 ले कर मैं घर पर जब लोटता...

उपमाएँ, द्वार पर आते ही कहती हैं कि
 सौ बरस और तुम्हें
 जीना ही चाहिये ।
 घर पर भी पग-पग पर चौराहे मिलते हैं,
 बाँहें फैलाये रोज मिलती हैं सौ राहें
 शाखा-प्रशाखायें निकलती रहती हैं
 नव-नवीन रूप-दृश्य वाले सौ-सौ विषय
 रोज-रोज मिलते हैं...
 और, मैं सोच रहा कि
 जीवन में आज के
 लेखक की कठिनाई यह नहीं कि
 कमी है विषयों की
 वरन यह कि आधिक्य ही उनका
 उसको सताता है,
 और वह ठीक चुनाव नहीं कर पाता है ।

पता नहीं.....

पता नहीं कब, कौन, कहाँ, किस ओर मिले,
 किस साँझ मिले, किस सुबह मिले !!
 यह राह जिन्दगी की
 जिससे जिस जगह मिले
 है ठीक वहीं, बस वहीं अहाते मेंहदी के
 जिनके भीतर
 है कोई घर
 बाहर प्रसन्न पीली कनेर

बरगद ऊँचा, जमीन गीली
मन जिन्हें देख कल्पना करेगा जाने क्या !!
तब बैठ एक
गम्भीर वृक्ष के तले
टटोलो मन, जिससे जिस छोर मिले,
कर अपने-अपने तप्त अनुभवों की तुलना
घुसना मिलना !!

यह सही है कि चिलचिला रहे फ़ासले,
तेज दुपहर भूरी
सब ओर गरम धार-सा रेंगता बला
काल बाँका-तिरछा;
पर, हाथ तुम्हारे में जब भी मित्र का हाथ
फैलेगी बरगद छाँह वहीं
गहरी-गहरी सपनीली-सी
जिसमें खुलकर सामने दिखेगी उरस्-स्पृशा
स्वर्गीय उषा...

लाखों आँखों से, गहरी अन्तःकरण तृषा,
तुमको निहारती बैठेगी

आत्मीय और इतनी प्रसन्न,
मानव के प्रति, मानव के
जी की पुकार
जितनी अनन्य !

लाखों आँखों से तुम्हें देखती बैठेगी

वह भव्य तृषा

इतने समीप

ज्यों-लाली-भरा पास बैठा हो आसमान

आँचल फेला,
अपनेपन की प्रकाश-वर्षा
में रुधिर-स्नात हंसता समुद्र
अपनी गम्भीरता के विरुद्ध चंचल होगा ।

मुख है कि मात्र आँखें हैं वे आलोक भरी,
जो सतत तुम्हारी याह लिए होतीं गहरी,
इतनी गहरी

कि तुम्हारी याहों में अजीब हलचल,
मानों अनजाने रत्नों की
अनपहचानी-सी चोरी में
घर लिए गये,
निज में बसने, कस लिये गये ।

तब तुम्हें लगेगा अकस्मात्
.....

ले प्रतिभाओं का सार, स्फूर्तिगों का समूह

सबके मन का

जो एक बना है अग्नि-व्यूह

अन्तस्तल में,

उस पर जो छायी है ठण्डी

प्रस्तर-सतहें

सहसा काँपी, तड़कीं, टूटीं

औ' भीतर का वह ज्वलंत कोष

ही निकल पड़ा !!

उत्कलित हुआ प्रज्वलित कमल !!

यह कैसी घटना है...

कि स्वप्न की रचना है ।

कि कमल-कोष के पराग-स्तर
 पर खड़ा हुआ
 सहसा होता है प्रकट एक
 वह शक्ति-पुरुष
 जो दोनों हाथों आसमान धामता हुआ
 आता समीप अत्यन्त निकट
 आतुर उत्कट
 तुमको कन्धे पर बिठला ले जाने किस ओर
 न जाने कहाँ व कितनी दूर !!

फिर वही यात्रा सुदूर की'
 फिर वही भटकती हुई खोज भरपूर की,
 फिर वही आत्मचेतस् अन्तः सम्भावना,
जाने किन खतरों से जूझे जिन्दगी !!

अपनी धकधक
 में दर्दिले फैले-फैलेपन की मिठास,
 या निःस्वात्मक विकास का युग
 जिसकी मानव गति को सुनकर
 तुम दौड़ोगे प्रत्येक व्यक्ति के
 चरण-तले जन पथ बन कर !!

वे आस्थाएँ तुमको दरिद्र करवायेंगी
 कि दैन्य ही भोगोगे
 पर, तुम अनन्य होगे,
 प्रसन्न होगे !!
 आत्मीय एक छवि तुम्हें नित्य भटकायेगी
 जिस जगह, जहाँ जो छोर मिले
 ले जायेगी.....
पता नहीं, कब, कौन, कहाँ, किस ओर मिले ।

एक अरूप शून्य के प्रति

रात और दिन
 तुम्हारे दो कान नम्बे-चोढ़े
 एक बिल्कुल सियाह
 दूसरा कतई सफ़ेद !
 एक न एक कान
 ढाँकता है आसमान
 और इस तरह जमाने के शुरू से
 आसमानी शीशे के पलंग पर सोये हो

घरती की चीखों के शब्द
 पंखदार कीड़ों से बेचैन
 तुम्हारे कानों के बालों पर बैठते
 भिनभिनाते, चक्कर काटते हैं ।
 अटूट है, लेकिन नींद ।
 आँखें ?

धूंधला सा 'नैब्यूला' !
 एक एक आँख में लाख लाख पुतलियाँ
 पुतलियाँ कैसी ?
 बुलबुलों की भाँति जो बनती-बिगड़ती हैं
 फिर उठ बैठती ?
 इसीलिये कोटि-कोटि कनोनिकाओं के बावजूद
 कुछ नहीं दीखता,
 एक एक पुतली में लाख-लाख दृष्टियाँ
 असंख्य दृष्टिकोण
 बनते बिगड़ते !
 इसीलिए, तुम सर्वज्ञ हो नींद में ।

फिर भी यशस्काय दिक्काल-सम्राट् !
तुम कुछ नहीं हो फिर भी हो सब कुछ
काल्पनिक योग्य की पूँछ के बालों को काट कर
होठों पर मूँछ लटका रखी है !

ओ नट-नायक
सारे जगत पर रोब तुम्हारा है !

तुमसे जो इन्कार करेगा

वह मार खाएगा

और उस मूँछ के हवाई बाल जब

बल खाते धरती पर लहरते

भँडराते चेहरों पर हमारे

तो उनके झुभते हुए खुरदरे परस से

खरोंच उभरती है लाल लाल

और हम कहते हैं कि

नैतिक अनुभूति हमें कष्ट देती है !

बिल्कुल झूठी है सठियायी

कीर्ति यह तुम्हारी ।

पर तुम भी खूब हो,

देखो तो—

प्रतिपल तुम्हारा ही नाम जपती हुई

सार टपकाती हुई आत्मा की कुतिया

स्वार्थ-सफलता के पहाड़ी ढाल पर

चढ़ती है हाँफती,

आत्मा की कुतिया

राह का हर कोई कुत्ता जिसे छेड़ता है छेकता है

लेकिन तुम खूब हो

सूनेपन के ढोह में अधियारी डूब हो !

मात्र अनस्तित्व का इतना बड़ा अस्तित्व
ऐसे घुप्प अँधेरे का इतना तेज उजाला !

लोग-बाग

अनाकार ब्रह्म के सीमा-हीन शून्य के

बुलबुले में यात्रा करते हुए गोल-गोल

खोजते हैं जाने क्या ?

बेछोर सिफर के अँधेरे में बिसा-बत्ती सफ़र

भी खूब है ।

सृजन के घर में तुम

मनोहर शक्तिशाली

विश्वात्मक फ्रैन्टेसी

दुर्जनों के भवन में

प्रचण्ड शौर्यवान अष्ट-सष्ट वरदान !

खूब रङ्गदारी है !

विपरीत दोनों दूर छोरों-द्वारा पुजकर

स्वर्ग के पुल पर

चुंगी के नोकदार

अप्रुष्टाचारी मजिस्ट्रेट, रिश्वतखोर थानेदार !

ओ रे निराकार शून्य !

महान विशेषताएँ मेरे सब जनों की

तूने उधार लीं

निज को सँवार लिया

निज को अशेष किया

यशस्काय बन गया सर्वत्र आविर्भूत !

साँझ पड़े

कदम्ब-वृक्ष-पास

मन्दिर-चबूतरे पर बैठ कर
 जब कभी देखता हूँ तुझको
 मुझे याद आते हैं—
 भयभीत आँखों के हंस
 और धाव-भरे कबूतर
 मुझे याद आते हैं मेरे लोग
 उनके सब हृदय-रोग
 घुप्प अँधेरे घर,
 पीली-पीली चिन्ता के अंगारों-जैसे पर,
 मुझे याद आती है राम की शबरी
 मुझे याद आती है लाल लाल जलती हुई दिबरी
 मुझे याद आता है मेरा प्यारा-प्यारा देश,
 लाल लाल सुनहला आवेश ।

अंधा हूँ
 खुदा के बन्दों का बावला बन्दा हूँ !
 परन्तु कभी-कभी अनन्त सौन्दर्य-संध्या में
 शंका के काले-काले मेघ सा
 काटे हुए गणित की तिर्यक् रेख सा
 सरीसृप-स्रक्-सा ।

मेरे इस साँवले चेहरे पर कीचड़ के घन्बे हैं
 दाग हैं
 और इस फैली हुई हथेली पर जलती हुई आग है
 अग्नि विवेक की ।
 नहीं नहीं वह—वह तो है ज्वलन्त सरसिज !
 जिन्दगी के दलदल-कीचड़ में धँस कर
 बस तक पानी में फँस कर

मैं वह कमल तोड़ साया हूँ—
 भीतर से इसीलिए गीला हूँ
 पंक से आवृत
 स्वयं में घनीभूत
 मुझे तेरी बिल्कुल जरूरत नहीं है ।

शमशेर बहादुर सिंह

य' शाम है

[ग्वालियर की एक खूनी शाम का भाव चित्र : लाल झंडे, जिन पर रोटियाँ टँगी हैं, लिये हुए मजदूरों का जुलूस । उनको रोटियों के बदले मानव-शोषक शैतानों ने गोलियाँ खिलायीं । उसी दिन—१२ जनवरी १९४४ की एक स्वर-स्मृति ।]

य' शाम है

कि आसमान खेत है पके हुए अनाज का ।

लपक उठीं लहू-भरी दरांतियाँ

—कि आग है, (.....)

धुँआ धुँआ

सुलग रहा

ग्वालियर के मजूर का हृदय ।

कराहती घरा

कि हायमय विषाक्त वायु

धूम्र-तिक्त आज

रिक्त आज

सोखती हृदय

ग्वालियर के मजूर का ।

गरीब के हृदय

टंगे हुए

कि रोटियाँ लिए हुए निशान

लाल लाल

जा रहे

कि चल रहा

लहू भरे ग्वालियर के बाजार में जुलूस

जल रक्षा

धुँआ धुँआ

ग्वालियर के मजूर का हृदय ।

अस्न का राग

सच्चाइयाँ

जो गंगा के गोमुख से मोती की तरह बिखरती हैं

हिमालय की बर्फीली चोटी पर चाँदी के उन्मुक्त नाचते

परों में झिलमिलाती रहती हैं

जो एक हज़ार रंगों के मोतियों का खिलखिलाता समंदर है

उमंगों से भरी फूलों की जवान कश्तियाँ

कि बसंत के नये प्रभात—सागर में छोड़ दी गई हैं ।

ये पूरब पश्चिम मेरी आत्मा के ताने-बाने हैं

मैंने एशिया की सतरंगी किरनों को अपनी दिशाओं के गिर्द

लपेट लिया

और मैं योरोप और अमरीका की नर्म आँच की धूप-छाँव पर

बहुत होले होले नाच रहा हूँ

सब संस्कृतियाँ मेरे सरगम में बिभोर हैं

क्योंकि मैं हृदय की सच्ची सुख-शान्ति का राग हूँ

बहुत आदिम, बहुत अभिनव !

हम एक साथ उषा के मधुर अघर बन उठे
 सुलग उठे हैं
 सब एक साथ ढाई अरब घड़कनों में बज उठे हैं
 सिम्फोनिक आनंद की तरह
 यह हमारी गाती हुई एकता
 संसार के पंचपरमेश्वर का मुकुट पहन
 अमरता के सिंहासन पर आज हमारा अखिल लोक-प्रेसिडेंट
 बन उठी है ।

देखो न हकीकत हमारे समय की कि जिसमें
 होयर एक हिंदी कवि सरदार जाफरी को
 इशारे से अपने करीब बुला रहा है
 कि जिसमें
 फेयाज खां बिटाफेन के कान में कुछ कह रहा है
 मैंने समझा कि संगीत की कोई अमर लता हिल उठी
 मैं शेक्सपियर का ऊँचा माथा उज्जैन की घाटियों में
 झलकता हुआ देख रहा हूँ
 और कलिदास को वैमर के कूजों में विहार करते
 और आज तो मेरा टैगोर, मेरा हाफ्रिज, मेरा तुलसी, मेरा गालिब
 एक-एक मेरे दिल के जगमग पावर हाउस का
 कुशल आपरेटर है ।

आज सब तुम्हारे ही लिए शांति का युग चाहते हैं
 मेरी कुटबुद्ध
 तुम्हारे ही लिये मेरे प्रतिभाशाली भाई तेजबहादुर
 मेरे गुलाब की कलियों से हँसते-खेलते बच्चों
 तुम्हारे ही लिए, तुम्हारे ही लिए
 मेरे दोस्तों, जिनसे जिन्दगी में मानी पैदा होते हैं

और उस निश्छल प्रेम के लिए
 जो माँ की मूर्ति है
 और उस अमर परम शक्ति के लिये जो पिता का रूप है ।

हर घर में सुख
 शांति का युग
 हर छोटा-बड़ा, हर नया-पुराना, हर आज-कल-परसों के
 आगे और पीछे का युग
 शांति की स्निग्ध कला में डूबा हुआ
 क्योंकि इसी कला का नाम जीवन की भरी-पूरी गति है

मुझे अमरीका का लिबर्टी स्टेचू उतना ही प्यारा है
 जितना मास्को का लाल तारा
 और मेरे दिल में पेकिंग का स्वर्गीय महल
 मक्का-मदीना से कम पवित्र नहीं
 मैं काशी में उन आर्यों का शंखनाद सुनता हूँ
 जो बोल्गा से आये
 मेरी देहली में प्रह्लाद की तपस्याएँ दोनों दुनियाओं की चीखट पर
 युद्ध के हिरण्यकश्यप को चीर रही हैं ।

यह कौन मेरी धरती की शांति की आत्मा पर कुरबान हो गया है
 अभी सत्य की खोज तो बाकी ही थी
 यह एक विशाल अनुभव की चीनी दीवार
 उठती ही बढ़ती आ रही है
 उसकी ईंटें घड़कते हुए सुर्ख दिल हैं
 यह सच्चाईयाँ बहुत गहरी नींवों में जाग रही हैं
 वह इतिहास की अनुभूतियाँ हैं
 मैंने सोवियत यूयुफ्र के सीने पर कान रख कर सुना है ।

आज मैंने गोर्की को होरी के आँगन में देखा
 और ताज के साये में राजर्षि कुंग को पाया
 लिफ्ट के हाथ में हाथ दिये हुए ।
 और ताल्लस्ताय मेरे देहाती यूपियन होठों से बोल उठा
 और अरागों की आँखों में नया इतिहास
 मेरे दिल की कहानी की सुर्खी बन गया ।
 मैं जोश की वह मस्ती हूँ जो नेरूदा की भवों से
 जाम की तरह टकराती है
 वह मेरा नेरूदा जो दुनिया के शांति-पोस्टऑफिस का
 प्यारा और सच्चा क्रासिद
 वह मेरा जोश कि दुनिया का मस्त आशिक
 मैं पंत के सुकुमार छायावादी सावन-भादों की चोट हूँ ।
 हिलोर लेते वर्ष पर
 मैं निराला के राम का एक आँसू
 जो तीसरे महायुद्ध के कठिन लोह-पदों को
 एटमी सूई-सा पार कर गया पाताल तक
 और वहाँ उसको रोक दिया ।
 मैं सिर्फ एक महान विजय को इंदीवर जनता की आँख में
 जो शांति की पवित्रतम आत्मा है ।

पश्चिम में काले और सफेद फूल हैं और पूरब में पीले और लाल
 उत्तर में नीले कई रंग के और हमारे यहाँ चम्पई-साँवले
 और दुनियाँ में हरियाली कहाँ नहीं
 जहाँ भी आसमान बादलों से जरा भी पोंछे जाते हों
 और आज गुलदस्तों में रंग-रंग के फूल सजे हुए हैं
 और आसमान इन खुशियों का आईना है ।
 आज न्यूयार्क के स्काईस्क्रैपरों पर
 शांति के डवों और उसके राजहंसों ने

एक मीठे उजले सुख का हलका सा अंधेरा
 और शोर पैदा कर दिया है
 और अब वो आर्जन्टीना की सिम्त अतलांतिक को पार कर रहे हैं
 पाल राब्सन ने नई दिल्ली से नये अमरीका की
 एक विशाल सिम्फनी ब्राडकास्ट की है
 और उदयशंकर ने दक्षिण अफ्रीका में नयी अजंता को
 स्टेज पर उतारा है
 यह महान नृत्य, वह महान स्वर, कला और संगीत
 मेरा है यानी हर अदना से अदना इंसान का
 बिलकुल अपना निजी ।

युद्ध के नक्शों को कैंचों से काटकर कोरियाई बच्चों ने
 क्षिलमिली फूल पत्तों की रोशन फ्रान्स से बना ली हैं
 और हथियारों का स्टील और लोहा हजारों देशों को
 एक-दूसरे से मिलाने वाली रेलों के जाल में बिछ गया है
 और ये बच्चे उन पर दौड़ती हुई रेलों के डिब्बों की
 खिड़कियों से हमारी ओर झाँक रहे हैं
 वह फ़ौलाद और लोहा खिलौनों, मिठाइयों और किताबों
 से लदे स्टीमरों के रूप में
 नदियों की सार्यक सजावट बन गया है
 या विशाल ट्रेक्टर-कम्बाइन और फ्रेक्टर-मशीनों के हृदय में
 नवीन छंद और लय का प्रयोग कर रहा है ।

यह सुख का भविष्य शांति की आँखों में ही वर्तमान है
 इन आँखों से हम सब अपनी उम्मीदों की आँखें सेंक रहे हैं
 ये आँखें हमारे दिल में रोशन
 और हमारी पूजा का फूल हैं
 ये आँखें हमारे कानून का सही चमकता हुआ मतलब

और हमारे अधिकारों की ज्योति से भरी शक्ति हैं
 ये आँखें हमारे माता-पिता की आत्मा
 और हमारे बच्चों का दिल हैं
 ये आँखें हमारे इतिहास की वाणी
 और हमारी कला का सच्चा सपना हैं
 ये आँखें हमारा अपना नूर और पवित्रता हैं
 ये आँखें ही अमर सपनों की हकीकत और
 हकीकत का अमर सपना हैं
 इनको देख पाना ही अपने-आपको देख पाना है,
 समझ पाना है।
 हम मनाते हैं कि हमारे नेता इनको देख रहे हों।

नजरूल के लिए

—क्या देखते, जाने क्या सोचते
 स्वतः अनजाने ही
 तीन देशों के एक साथ नागरिक
 तीन देशों की विप्लवी
 एकता में कहीं
 चित्त बसाये
 ...हमारे लिए तीन
 जो तुम्हारे लिए एक...
 मौन शांति दृष्टि से
 क्या अवलोकन करते
 जाने क्या अवलोकन करते
 कोन-सी कविता लिखते

किस नये कास्मिक विद्रोह और
 निर्माण की !
 “...आकाशे दामामा बाजे...”
 विद्रोही !
 क्या अब भी दामामे बज रहे हैं
 —और किस आकाश में
 किन-किन धरतियों के ऊपर
 मानव हृदयों में
 दमामे बज रहे हैं ? !
 “चल ! चल ! चल !” शुन, शुन,
 शुन !

वह शोकगीत के दमामे हैं शायद :
 मगर उनकी चोट कैसी कड़ी है,
 विद्रोही !
 न, न, न !
 वो शोकगीत के न होंगे,
 विजय के ही होंगे निरंतर
 सदा की तरह !
 क्यों तुम बोल न उठे
 यकायक कभी ?
 इतना कुछ हो गया
 दुनिया में
 हीरोशिमा नागासाकी ही नहीं
 पूरा वियतनाम
 पूरा चीन
 पूरा अफ्रीका
 पूरी अरब दुनिया
 —ये सब

मानव चेतना के इतिहास में
व्याप्त हो गया :

हम अपनी साँस में
इन सबको जीते हैं ।

....और तुम ?

युद्ध समाप्त हुआ
जिसमें से और

भीष्णतर युद्ध

आरंभ हुए;

पश्चिम का दानवी रूप

प्रकट हुआ;

तीसरी दुनिया ने जन्म लिया

और आंखें खोली....!

यहूदियों अरबों ईसाइयों

की आने वाली कयामत

अभी फट तो नहीं पड़ी है

इस धरती के सर पर,

मगर इसी विस्फोट के लिए

प्राण-पन से

अमरीका

निरंतर अहर्निश

घोर अभ्यास कर रहा है !

तुम्हें खबर नहीं है ?

तुम अपने....

अपने सुदूर

विद्रोही अवचेतन में

कौन से महाकाव्य की

मूक रचना करते रहे,

नजरूल,

जो तीनों दुनियाओं के

उत्तुंगतम थपेड़े तुम्हें

उठा नहीं पाये

तुम्हारी सहज समाधि से ?

अब तुम उसी

मूक महाकाव्य के साथ

हमारी सबकी

प्यारी धरती में

सहज ही समाधिस्थ

हो गये हो

धरती को अपनी

चेतना से

अधिक उर्वरा

करने ।

नहीं जानता अभी

इतिहास में क्या-क्या

गुल खिलेंगे

दायीं ओर से, बायीं ओर से,

कि और उनके बीच से....!

गुल

तूफानों से भीगे

और बड़े गुट्टल और कड़े

जैसे मध्य अमरीका

के बयाबानों में होते हैं

कैकटाई

कड़े नसों वाले कैकटस

कठोर कांटेदार

सुर्ख और हरे और सफेद
 और हीरे-नीलम-से
 निर्गन्ध चमत्कार से ।
 और...गुल
 देशों-देशों के
 अक्षांशों/को
 अपनी सुगंध से मस्त बनाते हुए
 सुर्ख गुलाब का
 एक उभरता दरिया
 सुर्ख गुलाबों के शिशु-मुख
 उल्लास से तमतमाये हुए
 आनन्द में नहाये हुए
 अनेक ऊर्जाओं की
 हारमनी से संगीतमय,
 मानो
 अपने नृत्य-दोल से
 प्यारी मासूम
 धरती को
 उद्वेलित किये हुए
 दूर तक गुलाबों का
 एक ओर-छोरहीन दरिया
 अरे नजरल !
 ...तुम हमारे बीच में
 थे न अब तक
 —मगर हमें तो
 अब पता चला
 कि तुम हमारे ही बीच में
 थे अब तक :

तुम्हारी अतिशय-अतिशय
 मध्यम गुमसुम
 तुम्हारा शांत महाकाव्य
 हमें बेमालूम तौर से
 —अपना साँस जैसे
 सहज संगीत में
 लिए हुए था
 अब तक
 और अब भी...
 क्या कोई अन्तर आ गया है ?
 गौर से देखो
 अनुभव करो
 क्या कोई अन्तर
 आ गया है ?
 जहाँ तुम थे
 अब भी वहाँ हो
 इस मौन में
 अजब घूमघाम है
 —हाँ यह पहले नहीं थी :
 इस मुकता में
 एक अजब बहार-सी है
 तुम्हारे युगयुगीन
 विद्रोही तराने की
 —जो अभी से पहले
 इतनी आबन्ताव
 लिए हुए नहीं था !
 याद है, याद है, याद है,
 गुरुदेव ने कहा था ?

"भाई नजरान !
 तुम्हारे विद्रोही संग्रह की
 पहली ही कविता को
 मैं लगातार तीन दिन तक
 पढ़ता रहा
 और उसी से
 मेरे जिन गीतों ने
 जन्म लिया है
 उन्हें ही तुम्हें
 इस कारागृह में भेंट देने के लिए
 स्वयं तुम्हारे सम्मुख
 आ खड़ा हुआ हूँ
 इन्हें स्वीकार कर
 मुझे धन्य करो !
 तुम एशिया की महाशक्ति हो,
 भाई !"
 और तुमने क्या कहा था,
 याद है ?
 "गुरुदेव,
 तुम सबमुच गुरुदेव हो !"
 एक महाकवि
 कारा के बाहर
 और एक कारा के भीतर :
 तुम्हारी वाणी ने
 दोनों के संगीतों को
 —एक कारा के भीतर के
 —एक बाहर के
 —दोनों संगीतों के

स्वरो को
 कहीं केंद्रीभूत कर दिया था ?
 तुम्हारा मौन मुझे बहुत अखरता है
 बहुत भारी व्यंजना लगता है
 बहुत स्थायी
 ...और फिर भी इतिहास
 की घड़कन में चुपचाप
 निरंतर बजता हुआ
 मैं तुम्हें सुनता हूँ
 और देखता हूँ
 सरो की नोकीली काली हरी कतारों
 में—
 जहाँ भी धान का कोई
 एक दाना है, वहाँ—
 जहाँ भी कोई बात
 "शोनार" और "शोणित" से
 शुरू होगी
 वहाँ तुम हो
 अचल
 सर झुकाये
 एकटक सामने से
 देखते
 न देखते हुए
 मूक मौन मुखर
 तीनों भौतिक देशों
 की आंतरिक एकता में
 मुखर अचल मूक
 संबवत अशीषवत

तीनों देशों के युद्ध
 वैमनस्य
 नाना योजनाओं के
 परे दृढ़, अवल,
 एक-रूप जैसे कि...
 ...हाँ अल्ताह एक है
 जैसे कि
 उसकी मखलूक
 यह प्यारी दुनिया
 हम-सुम एक हैं !
 इस एकता को
 अपनी भवों में उठाये
 अपनी आँखों में
 एक पवित्र सपने की तरह अजि
 बैठे हो
 अब भी बैठे हो
 हमारी आँखों के सामने
 हमारे हृदय आज
 ढाका की उस
 पावन धरती पर
 श्रद्धा और प्रेम के
 फूल बन कर
 अर्पित हो रहे हैं
 चारों ओर से
 ओ
 कविर्मनीषी !
 ओ हमारी
 सोने की मिट्टी के

प्राण !
 ओ हमारे प्राणों के
 अमर विद्रोही !
 और हमारी विश्व-शांति के
 अमर समायोजक !
 — जो मोन मूक ओर
 झुलाया हुआ-सा है
 वही
 हमारे साथ
 साँस लेता भी रहा है
 हम भी उसके साथ
 बराबर निरन्तर
 साँस लेते रहे हैं
 और अब भी
 उसकी साँस
 हमारी साँस में
 इतिहास बनती हुई
 चल रही है !

विजय देव नारायण साहू

हम सभी बेचकर आये हैं अपने सपने

आओ साथी,
हम सभी बेचकर आये हैं अपने सपने
उस चोटी पर
कल रात जहाँ पर बनजारों का लश्कर था ।

कुहराम, शोर, बोलियाँ, दाँव बेचैन गीत
वह बड़ी नशीली रात सभी ने देखी है;
हर खेमे में रिन्दों की पागल आवाजें
हर ओर चमकते जादू सी बेसुध आँखें
हर तरफ नाचती ज्वालाएँ तलवारों सी
आतिशबाजी की तरह हँसी के फव्वारे
टूटते हुए प्यासों की घायल झनकारें
हर नये मुसाफिर के कंधे पर गर्म हाथ
हर नये अफूते सपने के लिये मान
सब यों ही था ।

लगता था जैसे जीवन का आखिरी सत्य
जिसको हमने, केवल हमने ही देखा है
जादू बन कर मुट्ठी में आने वाला है :
मन में बिल्कुल ऐसा ही पावन साहस था
पैरों में बिल्कुल यही अनोखी निष्ठा थी

११५ / प्रगतिशील कविता के मील-पत्थर

आँखों में कच्चे, निष्कलंक व्याकुल, सपने ।

जलते माथे पर सूने कुहरे की छाया,
टूटती पसलियों में रोता, गूँजता दर्द,
खाली जेबों में हाथ दिये, सामर्थ्यहीन,
बिल्कुल यों ही,
सब कुछ खोकर

हस सभी उतर आये थे इस घाटी में ।

विश्वास करो,
यह सिर्फ तुम्हारा दोष नहीं,
यह नहीं कि सिर्फ तुम्हारी किस्मत झूठी थी
यह नहीं कि केवल तुमसे ही थी चूक हुई
उस पर्वत का जादू ही ऐसा है
हम सबने उस मदहोशी में—
नकली सच्चाई के बदले अनमोल सितारे बेच दिये ।

जब हम अपना सब कुछ खो कर
रोते रोते से बाहर आकर खड़े हुए
बंदिनी बहन की तरह सिर्फ
अपनी हारी आस्थाओं की
रोशनी हमें पहुँचाने बाहर तक आई
फिर दरवाजे हो गये बन्द;
इसके आगे क्या हुआ हमें भी याद नहीं ।

बस इसी तरह
जब आँख खुली
इस घाटी के पीछे से था सूरज निकला ।
तिरछी तिरछी किरनें फूटीं

प्रगतिशील कविता के मील-पत्थर / ११६

नन्हीं दूबों की पत्तो पर
बेदाग ओस की चटकीली
बूंदों ने भोले बच्चों सा
था प्रश्न किया :
'क्या हुआ तुम्हें ?'

निश्वास छोड़

हम सभी रहे थे खड़े कुतरते होठों को ।
सचमुच जो कुछ भी हुआ बहुत अनहोना था
लगता है कुछ जैसे काँटा सा निकल गया
बस भरे गले में एक प्रश्न
रह रह उतराया आता है
'अब क्या होगा ?'

साथी अब संभव नहीं पार वापस जाना

तुम भी इस घाटी में बस कर

नन्हें, फूलों से सपनों की

छोटी सी फसल उगा लेना ।

बेशक, इनमें तूफानों को

मधु-सिंचित करने वाली गन्ध नहीं होगी;

ये सरल स्वप्न यदि बहुत हुआ

तो सूरज उगने पर अपनी बाँसुरी खोल कर हँस देंगे

लेकिन इनका सोदा करने

अब कभी न बनजारों का लश्कर आयेगा ।

छापा मार दस्ते

इसी तरह हर रात

ठिठुरते पठारों पर बसी हुई

इस विशाल काल-वाहिनी के नायक

उत्सव मनाते हैं

पटाले छूटते हैं

और महताबियों के प्रकाश में

काली आकृतियाँ

इधर से उधर जाती हुई दीखती हैं

झनझनाते वाद्ययंत्रों के साथ

रह रह कर

जय-जयकार का कोलाहल

घटाटोप अँधेरे को चीरता

पहाड़ियों तक तैरता है ।

क्या तुमने एक सिसकती हुई पुकार सुनी

जैसे कोई पत्थर के नीचे दबा हुआ कराहता हो ?

बैठ जाओ, थोड़ी देर में

फिर कराह सुनाई देगी

बिल्कुल साफ़ और असंदिग्ध

और उसके साथ उसे ही डुबोने के लिए

फिर वही पठारों में काँपता हुआ

मदोन्मत्त विजयोल्हास ।

हर रात यही घटित होता है

लेकिन इस कराह को कोई नहीं जानता ।

हमने दिन में वेश बदल कर बाजारों में पड़ताल की

वे सिर्फ इतना जानते हैं

कि आसेतु पृथ्वी को जीत कर

विजेता उत्सव मनाते हैं ।

इससे अधिक वे कुछ नहीं कहते ।

तुमने छापामार दस्तों की किंवदन्तियाँ सुनी होंगी
 जिनका जिक्र लोग दबी जबान से करते हैं
 हमों हैं वे
 जो इस विशाल काल-वाहिनी में
 रातोंरात छापे मार कर
 दरारों की तलाश करते हैं
 और निर्जन पहाड़ियों में लौट जाते हैं ।
 लगता है कि उनके सरदारों को
 सचमुच हमारे अस्तित्व का ज्ञान नहीं है
 क्योंकि उनके समारोहों में कोई अन्तर नहीं पड़ता
 और दूरस्थ टुकड़ियों में पड़ी दरारें
 दिन चढ़ते भर जाती हैं ।

तुम हमारा जिक्र इतिहासों में नहीं पाओगे
 और न उस कराह का
 जो तुमने आज रात सुनी
 क्योंकि हमने अपने को
 इतिहासों के विषय दे दिया है
 लेकिन जहाँ तुम्हें इतिहासों में
 छूटी हुई जगहें दिखें
 और दबी हुई बीख का अहसास हो
 समझना हम वहाँ मौजूद थे ।

भवानी प्रसाद मिश्र

सतपुड़ा के जंगल

सतपुड़ा के घने जंगल
 नोंद में डूबे हुए से, ऊँघते अनमने जङ्गल !

झाड़ ऊँचे और नीचे, चुप खड़े हैं आँख मीचे
 घास चुप है, काश चुप है, मूक शाल, पलाश चुप है
 बन सके तो घँसो इनमें, धँस न सकती हवा जिनमें
 सतपुड़ा के घने जङ्गल, ऊँघते अनमने जंगल !

सड़े पत्ते, गले पत्ते, हरे पत्ते, जले पत्ते
 वन्य पथ को ढँक रहे से पंक-दल में पले पत्ते
 चलो इन पर चल सको तो, दलो इनको दल सको तो
 ये चिनोने, घने जंगल, ऊँघते अनमने जंगल !

अटपटी उलझी लताएँ, आदमी को खींच लाएँ
 पैर को पकड़ें अचानक, प्राण को कस लें, कँपाएँ
 बला की काली लताएँ, बला की पाली लताएँ
 लताओं के बने जंगल, ऊँघते अनमने जंगल !

मकड़ियों के जाल मुँह पर, और सिर के बाल मुँह पर
 मच्छरों के दंश वाले दाग काले-लाल मुँह पर
 बात—झंझा बहन करते, चलो इतना सहन करते
 कष्ट से ये सने जंगल, ऊँघते, अनमने जंगल !

अजगरों से भरे जंगल, अगम गति से भरे जंगल
सात सात पहाड़ वाले, बड़े छोटे झाड़ वाले
शेर वाले, बाघ वाले, गरज और दहाड़ वाले
कम्प से कनकने जंगल, ऊँघते, अनमने जंगल !

इन वनों के खूब भीतर, चार मुर्गे, चार तीतर
पालकर निश्चित बैठे, विजन वन के बीच पेटे
झोपड़ी पर फूस डाले, गोंड तगड़े और काले
जबकि होसी पास आती, सरसराती घास गाती
और महुए से लपकती मत्त करती बास आती
गूँज उठते डोल इनके, गीत इनके, गोल इनके
सतपुड़ा के घने जंगल, ऊँघते, अनमने जंगल !

जागते अंगड़ाइयों में, खोह खड्डों खाइयों में
घास पागल, कास पागल, शाल और पलाश पागल
लता पागल, वात पागल, डाल पागल, पात पागल
मत्त मुर्गे और तीतर, इन वनों के खूब भीतर
क्षितिज तक फैला हुआ-सा, मृत्यु तक मैला हुआ-सा
धुन्ध कासी लहर वाला, मथित उत्थित जहर वाला
मेरु वाला, शेष वाला, शंभु और सुरेश वाला
एक सागर जानते हो ? उसे कैसा मानते हो ?
ठीक वैसे घने जंगल, ऊँघते अनमने जंगल !

भँसो इनमें, डर नहीं है, मौत का यह घर नहीं है
उतरकर बहते अनेकों, कलकथा कहते अनेकों
नदी, निर्झर और नाले, इन वनों ने गोद पाले
लाख पंछी, सौ हिरनदल, चाँद के कितने किरन दल
झूमते बन-फूल, फलियाँ खिल रही अज्ञात कलियाँ

हरित दूर्वा, रक्त किसलय, पूत पावन पूर्ण रसमय
सतपुड़ा के घने जंगल, लताओं के बने जंगल !

गीत-फरोश

जी हाँ हुज़ूर, मैं गीत बेचता हूँ—
मैं तरह तरह के गीत बेचता हूँ
मैं सभी किसिम के गीत बेचता हूँ !

जी माल देखिए, दाम बताऊंगा
बेकाम नहीं है, काम बताऊंगा
कुछ गीत लिखे हैं मस्ती में मैंने
कुछ गीत लिखे हैं पस्ती में मैंने
यह गीत, सख्त सरदर्द भुलाएगा
यह गीत पिया को पास बुलाएगा ।
जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको
पर पीछे पीछे अक्ल जगी मुझको
जी, लोगों ने तो बेच दिये ईमान ।
जी आप न हों सुनकर ज्यादा हैरान ।
मैं सोच समझकर आखिर अपने गीत बेचता हूँ—
जी, हाँ हुज़ूर मैं गीत बेचता हूँ !

यह गीत सुबह का है गाकर देखें
यह गीत गजब का है, ढाकर देखें
यह गीत ज़रा सूने में लिखना था
यह गीत वहाँ पूने में लिखना था

यह गीत पहाड़ी पर बढ़ जाता है
 यह गीत बढ़ाये से बढ़ जाता है
 यह गीत भूख और व्यास भगता है
 जी, यह मसान में भूत जगाता है
 यह गीत भुवाली की है हवा, हूपूर
 यह गीत तपेदिक की है दवा, हूपूर
 मैं सीधे-सादे और अटपटे गीत बेचता हूँ—
 जी, हाँ हूपूर में गीत बेचता हूँ !

जी, और गीत भी हैं दिखलाता हूँ
 जी, सुनना चाहें आप तो गाता हूँ
 जी, छन्द और बेछन्द पसन्द करें
 जी अमर गीत और वे जो तुरन्त मरें
 ना, बुरा मानने की इसमें क्या बात
 मैं पास रखे हूँ कलम और दावात
 इनमें से भाये नहीं, नये लिख हूँ ?
 जो नये चाहिये नहीं, गये लिख हूँ ?
 इन दिनों कि दुहरा है कवि-धंधा
 हैं दोनों चीजें व्यस्त, कलम औ' कंधा
 कुछ घंटे लिखने के, कुछ फेरी के
 जी, दाम नहीं सँगा, इस देरी के
 मैं नये पुराने, सभी तरह के गीत बेचता हूँ—
 जी हाँ, हूपूर में गीत बेचता हूँ !

जी, गीत जनम का लिखूँ, मरन का लिखूँ
 जी, गीत जीत का लिखूँ, शरन का लिखूँ
 यह गीत रेशमी है, यह खादी का
 यह गीत पित्त का है यह बादी का

कुछ और डिजाइन भी हैं, ये इल्मी
 यह लीजे चलती चीज, नयी फ़िल्मी
 यह सोच सोचकर मर जाने का गीत
 यह दुकान से घर जाने का गीत
 जी, नहीं दिल्लगी की इसमें क्या बात
 मैं लिखता ही तो रहता हूँ दिन रात
 तो तरह तरह के बन जाते हैं गीत
 जी, रूठ रूठ कर मन जाते हैं गीत
 जी, बहुत ढेर लग गया हटाता हूँ
 गाहक की मर्जी—अच्छा जाता हूँ
 मैं बिल्कुल अन्तिम और दिखाता हूँ
 या भीतर जाकर पूछ आइये आप
 है गीत बेचना वैसे बिल्कुल पाप
 क्या करूँ मगर साचार हार कर गीत बेचता हूँ—
 जी हाँ हूपूर, मैं गीत बेचता हूँ !

नया त्यौहार

हाय रे संसार-सागर
 बन अगर पड़ता तो मैं तुझको बनाता एक गागर
 झुला कर हाथों में अपने उठाकर कन्धों से ऊपर
 मैं तुझे दे मारता पलभर नचाकर सलत भू पर
 पान की सी पीक बन बहती तेरी मीजी अवस्था
 बिखर जाती ठीकरे की तरह सब तेरी व्यवस्था
 शोर इस दुनियाँ में मचता, मैं खड़ा हँसता कि नचता
 एक क्षण में सत्य हो जाता सही ढंग से उजागर

हाथ रे संसार-सागर

युग भले लग जाँय तू गागर बनाया जायगा ही
और यह त्योंहार-घट-पटकन मनाया जायगा ही
चल रही हर धड़ी कोशिश तू कि घट बन भी रहा है
और घट बनते हुए कन्धे तलक तन भी रहा है
मैं न तुझको हाथ से अपने भले ही दचक पाऊँ
किन्तु इसमें लगा हूँ बेशक कि वह पल पास लाऊँ
नाचता है वह मुहरत शीश पर तेरे सरासर

हाथ रे संसार-सागर

तू बताता है कि तेरी यह व्यवस्था है सनातन
चले आते हैं सदा से राव-रंक रिनी-महाजन
तू सुझाता है कि घर में देख लो छोटे बड़े हैं
फूल दुनियाँ में नरम हैं मगर पत्थर तो कड़े हैं
कुछ महीसुर चाहिये ही और कुछ चंडाल होंगे
कुछ मरेगे भूख से कुछ लोग मालामाल होंगे
पाँच अंगुली हाथ की देखो कभी भी थीं बराबर ?

हाथ रे संसार-सागर

तू जँचाता पुण्य उनको जो कि तेरे पाप हैं रे
वर उन्हें घोषित किये चलता कि जो अभिशाप हैं रे
ढाल कहता है उसे, तलवार बन कर घँस गयी जो
तू उसे भुज-पाश बतलाता गले को कस गयी जो
जो रगों में मिद गया है जहर बन कर घरम है रे ?
घरम है जिसको पसीना वही तेरा करम है रे ?
और तू लट्ठ है अपनी इस तरह की कीमिया पर ?

हाथ रे संसार-सागर

हाथ सोने की किरन से सत्य को ढाँका है तूने

स्वर्ण-लाठी हाथ में लेकर समय हँका है तूने
जा-ब-जा आँकी है तूने स्वर्ण की लिपि से गुलामी
स्वर्ण महिमा राक्षसी के रोज बढ़ते हुए हामी
अन्नभेदी हो गया यह स्वर्ण युग-युग के छलों से
हिल पशु हो स्फीत जैसे रक्त पीकर निर्बलों से
सिसकता पैरों पर इसके है पड़ा सारा चराचर

हाथ रे संसार-सागर

चैत की प्रथमा में आते साल के पहले प्रहर में
उतरता हूँ आज रे संसार में तेरे जहर में
आज मैंने प्रलय-भेरी-स्वर सुना दूटेंगे बंधन
डूब जायेंगे प्रलय के गीत में दुनियाँ के क्रन्दन
आज लहरों में समाकर आग पानी में लगायें
जिस तरह से तू चला आया अलग उससे चलायें
छन्द को लेकर शपथ, निर्माण के नवगीत गाकर
मैं बनाने जा रहा हूँ आज तुझको एक गागर ।

भारत भूषण अग्रवाल

हम नहीं हैं द्वीप

हम नहीं हैं द्वीप जीवन की नदी के
वरन् जीवन से भरे निर्मल सरोवर !
भले मिट्टी से हुआ निर्माण
किन्तु मिट्टी है परिधि ही
नहीं है मिट्टी हमारे प्राण !
सूर्य की दीपित किरण से
नीर के भावुक मिलन की हम विमल सन्तान !

ठीक है, हम आज चारों ओर सीमा से घिरे हैं
किन्तु हममें जी रही गति की असीमित धार
हममें जी रहा है
सिन्धु की गहराइयों का
मेघ की ऊँचाइयों का प्यार !
हम प्रखर आलोक, गतिमय भविना के पुत्र
हम नहीं हैं रेत के ल्हे, अशुभ अम्बार !

हम सरोवर हैं
नहीं हैं धार !
रुढ़, सीमित, स्थिर बना जीवन हमारा
हर किनारा बन गया व्यवधान !
अब नहीं हममें तरंगित गान

१३० / प्रगतिशील कविता के मील-पत्थर

और बंधन की व्यथा में खो गया अभिमान ।
विवश अब हम बह नहीं सकते,
और अपनी ठौर अपने आप ही में बंद
अपनी बात आपस में किसी से कह नहीं सकते ।

आज भी यद्यपि हमारा है अमित उपयोग :
हम अतिथि की प्यास के उपचार;
निकटवर्ती वनस्पति के मीत संवेदन-भरे,
नगर की लघु ज्विन्दगी के मेघ
गाँव की भोली, सलोनी कामिनी के वरदान कलश के
मंद बुझती साँस में सोपान पर आसीन कवि के
आर्द्र मिलनाह्वान !
पर हमें बेचैन करता यह व्यथा का भाव :
कट चुके हम धार से,
गति से हमारा हो चुका अलगाव !

हम सरोवर हैं
नहीं हैं धार ।
यह नहीं है शाप अथवा नियति अपनी
किन्तु यह तो बस समय की बात
क्षण भंगुर परिस्थिति !
हम पदी के पुत्र हैं, पाषाण-कारा से घिरे
दूर उसके क्रोड़ से, हम दूर उस स्रोतस्विनी से,
तदपि उसके अंश, हम वंशज उसी के !
हो गये हों हम भले मृयमाण
पर
समयवाय के अभियान में मिल
एक होने के लिए आकुल हमारे प्राण !

प्रगतिशील कविता के मील-पत्थर / १३१

तुम अगर हो द्वीप
 रूखी रेत के बेडोल टीले !
 धार की ही गोद में बैठे विषय व्यवधान,
 तो भले ही तुम रहो ऊँचे, महान
 पर कृपा कर यह न सोचो :
 धार की हर लहर जो आती तुम्हारे पास
 ठोकती है वह तुम्हारी पीठ
 या तुम्हारी कीर्ति में वह छेड़ती है तान !
 वह तो विकल बेचैन तुमको लांघ जाने के लिए
 सहज गति अनिच्छा पाने के लिए
 धारा बढ़ाने के लिए ।

और हम यद्यपि नहीं हैं धार
 यद्यपि हैं सरोवर मात्र
 किन्तु यह केवल समय की बात !
 लौटकर टुक ग्रोष्म आने दो
 किरण का हमको तनिक वरदान पाने दो,
 उफन जाने दो !
 हम अहं को भूल
 मिटाकर अपनी बनावट,
 तोड़ सीमाएँ सभी
 एक दिन फिर से मिलेंगे धार में
 समवेत जीवन के अपरिमित ज्वार में !

मूर्ति तो हटी, परन्तु...

तम में भटकती हुई अनगिनत आँखों को
 जिसने नयी दृष्टि दी

१३२ / प्रगतिशील कविता के मील-पत्थर

खोल दिये सम्मुख नये क्षितिज
 नूतन आलोक से मंडित की सारी भूमि
 जनमन के मुक्ति-दूत
 उस देवता के प्रति
 श्रद्धा से प्रेरित हो
 समवेत जन ने
 प्रतिभा प्रतिष्ठित की अपने सम्मुख विराट् !
 अपने हृदयों में बसी उर्ध्वबाहु कल्पना
 पत्थर पर आँकी अति यत्न से !
 मूर्ति वह अद्वितीय महाकाय
 शीश पर जिसके हाथ धरते थे मेघराज
 चरणों में जिसके जन झुकते थे भक्ति से
 अंजलि के फूल भार के समान
 अधरों पर जिसके थी मंत्रमयी मुस्कान
 उल्लसित करती थी लोकप्राण !

यों ही दिन बीत चले
 और वह मूर्ति
 दिन पर दिन स्वयमेव
 मानो और बड़ी, और बड़ी होती गयी !
 जड़ प्रतिभा में बंद यह रहस्य, यह जादू
 कितने समझ सके, कितने न समझे—यह कहना कठिन है
 क्योंकि उसे पूजा सब जन ने
 भूलकर एक छोटा सत्य यह :
 पत्थर न घटता है, न बढ़ता है रंभमात्र,
 मूर्ति बड़ी होती जा रही थी, क्योंकि
 वे स्वयं छोटे होते जाते थे;
 भूलकर एक बड़ा सत्य यह :

प्रगतिशील कविता के मील-पत्थर / १३३

मूर्ति की विराट्ता ने ढँक लिये वे क्षितिज
देवता ने एक-एक करके जो खोले थे !

आखिर में एक दिन ऐसा भी आ पहुँचा
मूर्ति जब बन चुकी थी आसमान
और जन बन चुके थे चूहों से, मेंढक-से,
छोटे, ओछे नगण्य !

क्षितिजों के सूर्य की जगह थी वह मुस्कान
जिसमें नहीं था कोई अपना आलोक-स्रोत !
होकर वे तम में बंद
फिर छटपटाने लगे ।

तभी कुछ साहसी जनों ने बढ़
अपनी लघुता का ज्ञान दिया हर व्यक्ति को
और फिर
शून्य बन जाने के भय से अनुप्राणित हो
समवेत जन ने
अपने ही हाथों से गढ़ी हुई देवता की मूर्ति वह
तोड़ डाली—
छैनी से, टांकी से, हँसिया से, हथोड़ी से
जिसको जो मिला उसी शस्त्र से ।
गढ़ते समय भी ऐसा उत्साह कब था ?

देखा तब सबने आश्चर्य से :

प्रतिमा की ओट में जो रमी रहीं एक युग
उनकी वे दृष्टियाँ अब असमर्थ थीं

कि सह सकें सहज प्रकाश आसमान का ।

और फिर सबने यह सोचा असमंजस से :

मूर्ति तो हटो, परन्तु सामने डटा था प्रश्न चिह्न यह :

मूंद लें वे आँखें याकि प्रतिमा गढ़े नयी ?
हर अंधी श्रद्धा की परिणति है यह खंडन !
हर खंडित मूर्ति का प्रसाद है यह प्रश्न चिह्न !

गिरिजाकुमार माथुर

तीतीसवीं वर्ष गाँठ

उम्र की इस सोखनी मीनार पर
मंछिलें मैंने तिहाई पार कीं
जिन्दगी को खींचकर लाते हुए
राह की सौगात सारी वार दी
और भी ऊँची चढ़ाई सामने
और भी भारी लड़ाई सामने
यह भयानक खोखली मीनार है
शक्ति देता सिर्फ़ तेरा प्यार है

साँस लेने में रुकूँ तुम प्यार दो
मत, नयन, तन अधर की रसघार दो
शक्ति दो मुझको, सलोनी, प्यार से
लड़ सकूँ मैं जुल्म के संसार से
बाँह गोरो मनुजता की ध्वज बने
छाप तेरे अधर की सूरज बने
फिर उमड़ते प्यार की दृढ़ ढाल दो
फिर नयन मेरे नयन में ढाल दो

साल आँचल से पसीना पोंछ दो
बाल पतली उँगलियों में ओंछ दो
उम्र की सारी थकान उतार दो
देह पर हथियार नये सँवार दो

क्योंकि जीवन पर खिंची तसवार है
दैन्य, दुख, अन्याय अत्याचार है
आदमी पर आदमी का वार है
विश्व नैतिकता पतन के द्वार हैं

आज दुनियाँ के करोड़ों आदमी
सह रहे हैं धूप, सर्दों औ नमी
जिन्दगी का एक भी साधन नहीं
उम्र तपती धूप है, सावन नहीं

जन्मदिन की क्या खुशी होगी उन्हें
जिन्दगी है मृत्यु से भारी जिन्हें
भूख, बीमारी, गरीबी, गन्दगी
कौड़ियों के मोल बिकती जिन्दगी
आदमी का मिट गया सम्मान है
मनुजता का अब न गरिमा गान है

यह नहीं इंसान की है सभ्यता
स्वार्थ, लालच, युद्ध जिसके देवता
मूलधन हिंसा, गुलामी सूद है
आदमी बन्दूक की बारूद है

जब जगत को चाहिये फुलवारियाँ
हो रही तब युद्ध की तैयारियाँ
फिर धरा-सीता सताई जा रही
फिर असुर संस्कृति जमाई जा रही

मिट रही रंगीन जीवन की छटा
छा रही हिंसक मशीनी धन-घटा
आज जीवन को चुनौती मौत की
नीति कैदी है कुटिल कलघोत की
है गनीमत हम न सड़कों पर गिरे
भूख रोगों से नहीं अब तक भरे

है यही क्या कम कि औसत उम्र से
जिंदगी के दस बरस ज्यादा हुए

विश्व में जब कुटिलता है, त्रास है
सत्य शिव का तब हमें विश्वास है
और है विश्वास जन-कल्याण का
रंग-रस का, याग का, बलिदान का

फिर कंटीली दृष्टि रंजित प्यार दो
आदमी की शक्ति का आधार दो
प्यार तुमसे हो जगत से प्यार हो
प्रेरणा यह रंग-मय संसार हो
शक्ति दो मुझको, सलोनी, प्यार से
लड़ सकूँ मैं मौत की ललकार से।

हठश देश

मैं अफ्रीका

मुझ पर दुख के यम की घिरी साँवली छाया
युगों पुरानी गहरी छाया
इतनी गहरी
जैसी श्याम कोयले की हैं खानें मेरी
साँसें भरता मेरा जीवन
नमी भाप सी फैलाता है
जहाँ दैत्य काँगो नद भीषण
गरम सिमूम उगलता
रज-तापित हरमेटन
कालाहारी पत्थर-मरु, हम्मदा पुराना

बरफ-ढके किलिमंजारों का अग्नि दहाना
भूभूल सा वह पाँडु सहारा
दुर्दम भीम जंगलों का अभिशप्त दुधारा

जिस दिन इस न्दारी घरती पर
प्रथम मानवी अरुण खिला था
पलक खोलता समय युवा था
तब काली नदियों के तट पर
बीहड़ मैदानों के ऊपर
आदिम नगर उठे थे मेरे
लबजोर, मैमनान ओ' मेम्फिस
कारथेज, सायरीन ओ' थेबेस
गाता था मैं आइसिस के मंदिर-यक्षों में
तारों भरे ओसाइसिस के रंगीन पथों में

मैं अफ्रीका

मौन पिरामिड

मैं रहस्यगर्भा स्फिक्स हूँ

विश्वसृष्टि की जटिल पहेली

युग युग से मैं

देता आया प्रकृति काल को नित्य चुनौती

व्योम-फाड़ दानव-चिकार मैं डिनोसार की

अंधड़ की सर्राहट हूँ मैं

इक्थ्योसारस पक्षिराज की

मैं दहाड़ विकराल बबर की

चीख रिनो की

डिक्-डिक् की सरपट

चिघाड़ें जलघोड़ों की

उमस ज़िदगी की है मेरी
मकड़-जाल से भभक भरे वर्षावन जैसी
कीच-घरोंदों में सोता मैं
दैत्य-छिपकली भरे वनों में
गोजर मक्खों के विजनों में
नदशूकर ओ घड़ियालों में

नागफनी उत्तुंग कंटकित
साँप नहीं है, नहीं साँप है
आदमखोर लता-काँटों में
महाशक्ति का विकल शाप है
साँपों की बेला से उलझा
मैं मानव फंगस का जंगल
टीकेदार कोबरा फन पर
गोंद चू रही मेरी प्रतिपल
गाढ़ी गोंद कि रस धरती का
जिसमें सरक रहे हैं अजगर
गोरे लाल-तंगीले अजगर
द्वर्धर महानील से लेकर
चितकबरे दक्षिण सागर तक
हेमगर्भ मिट्टी के सत को
निगल रहे कुंभोदर अजगर
होरक, मणि-मुक्ता, हिरण्य
मैं कमल-कोष रस, धातु, द्रव्य का
ऊम कमर-बंधन पृथ्वी का
श्यामल मणि नितम्बिनी भू का
मैं अफ्रीका
इन्सानि जीवन-यात्रा की

मैं बनमानस पहली मंजिल
खींच सृष्टि-रथ बाहर लाया
छोड़ गुरीलों वाला जंगल
दूटी थो इतिहास कड़ी जो
शुरू हुई फिर मुझ पर आकर
वह विकास मणि लोप हो गयी
मुझमें जीवन विकसित पाकर

बीत गये जब

तारकोल से गाढ़े आदिम अंधकारमय
वर्ष करोड़ों अग्नि-वाष्प के
मूसलधार गरम मेघों के परदे टूटे
नीली धातु भरी गाजों की
तड़क-लकीरें खत्म हो गयीं
अब हज़ार मीलों के खोखल फटे
बन गये स्याह समुन्दर
मेरी धरती उभरी थी तब
घोर जीव, वन लिये पीठ पर
फिर विराट् भूमंथन आये
अट्टहास कर जुड़ी सतह शतखंड हो गयी
मिट्टी की जड़ फटी निसर्ग कराल रोर से
एक समूची सहस्र कोस की स्लेट
फूट कर क्षत्र हो गयी
भीम लोथड़े धरती के
दूटे, छिटके, द्वीपों में बिखरे
महापिंड वह आदि गोंडवाना-प्रदेश का
भ्रूण-विघाता वही पिता था
औरस वीर्यपुत्र हैं उसका

में अफ्रीका

देखो मेरी स्याह बनैली भूमि उर्वरा
जिस पर पिता नील बहता है
उगल रही हैं खानें सोना
अभ्रक ताँबा जस्ता क्रोमियम
टीन कोयला लोह प्लेटिनम
युरेनियम, अनमोल रसायन
केपोक, सिल्क-कपास, अश्वघन
द्रव्य फ़ासफ़ेटों से पूरित
मेरा वह नगराज एटलस
नदी-रेत में रिस-रिस फैली
मेरे सोने-चाँदी की रज
वन-तरुओं से चूता अमरित
किन्तु जमे सोड़े की शीलों सा
अब मेरा पीड़ित है अन्तर
एक ओर है मेरी सम्पत्ति
एक ओर यह कीचड़ के घर
एक ओर हब्शी गुलाम मैं
एक ओर कुंभोदर अजगर
मेरी भूमि कुबेर सरीखी
मैं हूँ अब तक स्याह जानवर
छोड़ गये खंडहर ही मुक्त पर
कितने हनीबाल औ सीज़र
रक्त-पत्थरों के पग धर कर
छाती पर इतिहास चला है
फीनीशियन, ग्रीक, रोमन
वेंडाल, अरब का दीप बुझा है

पर इतिहासों की मशाल से
जिन्दा जल कर भी न मरा हूँ
तूतन खार्मन, विलयोपेट्रा के चिह्न मिट गये
मैं जिन्दा हूँ

महायातना की चट्टानों से
मैं जकड़ा हुआ प्रमीथस
गरम हृदय का मांस नोच कर
मनुज-बाज खा रहे निरन्तर
नंगी स्याह पीठ पर उछले
सदियों के निर्मम कोड़े हैं
शोषक-दैत्य-मशीनों ने
पंजों के गड़े चिह्न छोड़े हैं
पहले पहल अग्नि जीवन की
मैं ही पृथ्वी पर था लाया
इस मिट्टी के द्रव्य, धातु, रस
मनुज, जीव, वन, नद, मरु, पर्वत में दीपित है
उसी अग्नि की व्यापक काया
वही अग्नि खेतों से उठ कर
मुक्ति-उषा बन कर आयेगी
वर्णयंत्रणा वाली लोहे की दीवार पिघल जायेगी

नयी उषा आ रही
शोकमय एक समूची आदि कौम पर
नयी उषा आ रही
सैकड़ों साल बाद इन पिरामिडों पर
शुतुरमुर्ग के श्वेत परों सी
मुक्ति-धूप साँवर गाँवों पर

जम्बेजी, नाइखर, कागेरा,
कांगोनद, बहर-एल-जेबेल पर
महाजाति की मनुज चेतना
कीच-वरींदों से अब उगती
अमिन्हतेप की भीष्म मूर्ति सी
भोर-धुंध में सोकर उठती

अपनी अपलक काल-दृष्टि से
मौ स्फिंक्स देखती लीला
ममी उठ रही हैं अजगर की
दफ़ल हुआ यम-युग जहरीला
महाजाति की सुबह हो रही
चमक इतिहासों का शीषा
मौन समय-स्फिंक्स करती
निश्चित सूरज की अग्नि प्रतीक्षा

धर्मवीर भारती

निराला के प्रति

वह है कारे कजरारे मेघों का स्वामी
ऐसा हुआ कि
युग की काली चट्टानों पर
पाँव जमा कर
बक्ष तान कर
शीश घुमा कर
उसने देखा
नीचे धरती का जर्रा जर्रा प्यासा है,
कई पीढ़ियाँ
बूँद-बूँद को तरस-तरस दम तोड़ चुकी हैं,
जिनकी एक एक हड्डी के पीछे
सौ सौ काले अन्धड़
भूखे कुत्तों से आपस में गुये जा रहे ।
प्यासे मर जाने वालों की
लाशों की ढेरी के नीचे
कितने अनजाने
अनदेखे
सपने
जो न गीत बन पाये
घुट-घुट कर मिटते जाते हैं ।
कोई अनजनमी दुनियाँ है

जो इन लाशों की ढेरी को
उलट - पुलट कर
उभर उभर उभर आने का मचल रही है !

वह था कारे कजरारे मेघों का स्वामी
उसके माये से कानों तक
प्रतिभा के मतवाले बादल लहराते थे
मेघों की बीणा का गायक
धीर गंभीर स्वरो में बोला—
'झूमझूम मृदु गरज गरज घनघोर
राग अमर अम्बर में भर निज रोर ।'
और उसी के होठों से
उह चलीं गीत की श्याम घटायें
पाँखें खोले
जैसे श्यामल हंसों की पाँतें लहरायें !
कई युगों के बाद आज फिर
कवि ने मेघों को अपना संदेश दिया था
लेकिन किसी यक्ष विरही का
यह करुणा-संदेश नहीं था
युग बदला था
और आज नव मेघदूत को
युग-परिवर्तक कवि ने
विप्लव का गुरुतर आदेश दिया था !
बोला वह...
हर जलधारा कल्याणी गंगा बन जाये
अमृत बन कर प्यासी धरती को जीवन दे
औ' लाशों का ढेर बहा कर
उस अनजनमी दुनियाँ को ऊपर ले आये

जो अन्दर ही अन्दर
गहरे अँधियारे से जूझ रही है ।
और उड़ चले वे विप्लव के विषघर बादल
जिनके प्राणों में थी छिपी हुई
अमृत की गंगा ।

बीत गये दिन वर्ष मास...
बहुत दिनों पर
एक बार फिर
सहसा उस मेघों के स्वामी ने यह देखा...
वे विप्लव के काले बादल
एक एक कर बिन बरसे ही
लोट रहे हैं
जैसे थक कर
सांध्य विहग घर वापस आयें ।
चट्टानों पर पाँव जमा कर
वक्ष तान कर उसने पूछा...
'झूम झूम कर
गरज गरज कर
बरस चुके तुम ?'
अपराधी मेघों ने नीचे नयन कर लिये
और काँप कर वे यह बोले...
'विप्लव की प्रलयंकर धारा
कालकूट विष
सहन कर सके जो
धरती पर ऐसा मिला न कोई माथा !
विप्लव के प्राणों में छिपी हुई
अमृत की गंगा को

धारण कर लेने वाली
 मिली न कोई ऐसी प्रतिभा
 इसीलिये हम नभ के कोने कोने में
 अब तक मँडराये
 लेकिन बेबस
 फिर बिन बरसे वापस आये ।
 ओ हम कारे कजरारे मेघों के स्वामी
 तुम्हीं बता दो
 कौन बने इस युग का शंकर
 जो कि गरम हँस कर पी जाये
 और जटाएँ खोल
 अमृत की गंगा को भी धारण कर ले !'
 उठा निराला, उन काले मेघों का स्वामी
 बोला... 'कोई बात नहीं है
 बड़े बड़ों ने हार दिया है कन्धा यदि तो
 मेरे ही इन कन्धों पर अब
 उतरेगी इस युग की गंगा
 मेरी ही प्रतिभा को हँस कर कालकूट भी पीना होगा ।'
 और नये युग का शिव बन कर
 उसने अपना सीना तान जटाएँ खोलों ।
 एक एक कर वे काले जहरीले बादल
 उतर गये उसके माथे पर
 और नयन में छलक उठी अमृत की गंगा ।
 और इस तरह पूर्ण हुआ यह नये ढंग का गंगावतरण ।

 और आज वह कजरारे मेघों का स्वामी
 जहर संभाले, अमृत छिपाये
 इस व्याकुल प्यासी धरती पर

पागल जैसा डोल रहा है,
 आने वाले स्वर्णयुगों को
 अमृतकणों से सींचेगा वह
 हर विद्रोही कदम
 नयी दुनियाँ की पगडण्डी लिख देगा,
 हर अलबेला गीत
 मुखर स्वर बन जायेगा
 उस भविष्य का
 जो कि अंधेरे की पतों में अभी मूक है ।
 लेकिन युग ने उसको अभी नहीं समझा है
 वह अवधूतों जैसा फिरता पागल-नंगा
 प्राणों में तूफान, पलक में अमृत-गंगा ।
 प्रतिभा में सुकुमार सजल घनश्याम घटाएँ
 जिनके मेघों का गंभीर अर्थमय गर्जन
 है कभी फूट पड़ता अस्फूट वाणी में
 जिसको समझ नहीं पाते हम
 तो कह देते हैं
 यह है केवल पागलपन
 कहते हैं चैतन्य महाप्रभु में, सरमद में
 ईसा में भी
 कुछ ऐसा ही पागलपन था
 उलट दिया था जिसने अपने युग का तख्ता ।

अनुशासन पर्व

१

तरेरी हुई भोंहें, तने हुए सोने, कसी हुई मुट्टियाँ
कहाँ गयीं ?
भीख माँगने वाले हाथ, झुकी हुई आँखें
खुशामदी अदा, कटी हुई पाँखें—
अदृश्य हथकड़ियों को कंगन की तरह खनकाते हुए
बेड़ियों को पैजानी की तरह छनकाते हुए—
ये कौन ठुमक-ठुमक कर नाच रहे हैं
ये कौन सिले हुए होठों से अविराम अभिनन्दन बाँच रहे हैं ?
ये केसा अजीब लौहार है मेरे मालिक !
इसमें मैं कहाँ हूँ ?

तो क्या शब्दकोश से गिरा दिया गया
एक गैर जरूरी शब्द स्व तं त्र ता
एक तकलीफ देह शब्द जो खाहमखाह याद दिलाता था—
नीला फैला आकाश, खुली खिड़की, आजाद तैरते बादल
पाखी की चहक, झूमती डाली, पहाड़ी नदी
उन्मुक्त चंचल बच्चे
घर लौटते निश्चित बतियाते लोग

अब सहमे हुए लोग बतियाते नहीं
बाँध दो गयी हैं झूमती शाखें
कसी हुई मुट्टियाँ, तरेरी हुई आँखें
रातों रात बदल गयी अपने आप !

हवाओं में सिसकता हुआ रुँधे गलों का भयभीत जयजयकार
परवरदिगार !

पर अपनी इस आलानाम की चीज का मैं क्या कहूँ
क्या कहूँ इस एक एक शब्द का
जिस पर अमित है तुम्हारे हाथों की हल्दी छाप !

२

आला रे, आला रे, आला !
रही कागज, शीशी बोटल वाला
आपके घर में जो भी बेकार का सामान हो
सपने हों, सचाई हों, आत्मा हो, ईमान हो
मत शरमाइये
बेहिचक ले आइये
हम उसे तोल कर वाजिब मोल देंगे
आपके लिये समृद्धि का द्वार खोल देंगे
ओ हो ! आप समझते हैं कि आप बहुत बड़े हैं
ईमान में, बुद्धि में, रंग में, रूप में
जनाब वहाँ मार्केट की सीढ़ियों पर घूप में
बड़े से बड़े बिकाऊ लोग खड़े हैं
गिरती हुई क्रोमियों की पर्चियाँ लगाए
क्रांति की डलिया में समर्पण सजाए
चले आ रहे हैं एक से एक समझदार
सरे बाजार—

परवरदिगार !

पर इस आत्मा नाम की चीज का क्या कहूँ ?
क्या इसे थाल में रखकर पेश करता रहूँ
बेकसूर मार खाए बच्चे की तरह आखिर कब तक डरता रहूँ !

जिसे पुरखों के अपराजेय ईमान की तरह पाया है
जिसे उगते सूरज के जयगान की तरह गाया है
हर हारती सचाई को बचाने के लिये जो ढाल की तरह उठी है
बड़े से बड़े झूठ के खिलाफ जो महाकाल की तरह उठी है
क्या वह ज्वार के साथ रेत के पदचिह्न की तरह बह जायगी ?
क्या सिर्फ झूठ, सिर्फ झूठ, सिर्फ झूठ की आवाज बाकी रह जायगी ?

तो,

परवरदिगार

यह तुम्हारा बुजदिली का लौहार

मुबारक हो तुम्हें, मुझे अपने एकांत में लोट जाने दो

और जो झुके नहीं टूट गये, उनकी

पराजय का विजयगान मन ही मन गुनगुनाने दो !

नरेश मेहता

अनुनय

यहाँ वहाँ लोग ही लोग हैं

मैं कहाँ हूँ ?

तुम्हारे पैरों के नीचे

मेरा नाम कहीं दब गया है

उठा लेने दो

मेरे लिए वह मूल्य है ।

मैं नहीं कहता कि

लोगों की देहों से दुर्गन्ध आती है

पर—सुगंध भी नहीं कह सकता,

ये दोनों ही आपस हैं

इसलिए मिथ्या हैं,

जबकि

हर परिश्रम की गंध होती है

वही लोगों में होती है

मैं ऐसी गंध को भी मूल्य कहता हूँ ।

लेकिन यह भी नहीं कि

लोग गंदे नहीं होते

व्यक्तियों की तरह !

जिस किसी को नाम दोगे
स्वत्व अनुभव होगा
लेकिन
लोग होने का अर्थ
नामों को कुचलना नहीं होता ।

आजो
हम सब अपने अपने नाम खोज निकालें
भीड़ों की असावधानियों से जो
कुचल गये हैं
क्योंकि वे मूल्य हैं
अपने को जानने के लिए—कि
हम कब लोग होते हैं
और कब नहीं होते ।

समय-देवता

सोने की बह मेघ चील
अपने चमकीले पंखों में ले अन्धकार अब बैठ गयी है दिन-अँडे पर ।
नदी-वधू की नथ का मोती चील ले गयी ।
गगन-बीड़ से सूरज-वाला हाँक रहा है दिन की गायें ।
नभ का नोलापन चुप है दिशि के कंधों पर सिर धर ।
इस उतराई-मार्ग दिवस के सैन्धव नत शिर होकर उतरे
सधे चरण से
चमक रही पीले बालों वाली अयाल उनकी गर्दन की ।
साँझ-दिवस की पत्नी-अपने नील-महल में बैठी कात रही है बादल

दिशि की चारों कन्याएँ हैं माँग रहीं तारों की गुड़ियाँ ।
अभी बादलों के परवत पर खेल रही थी दिन की लड़की स्वर्ण किरण वह
नहीं पास में पिता देख चौकी थी, मेले में खोये बालक सी
दूर आल्प्स के पार, किरन-गायों की घंटी सुन कर दौड़ रही है
तिब्बत की ठंडी छते लांघ वह ।
पूरब दिशि में हड्डी के रंग वाला बादल
लेटा है पेड़ों के ऊपर गगन-खेत में
दिन का श्वेत अश्व मार्ग के श्रम से थक कर मरा पड़ा ज्यों ।

समय देवता !
हटा ले गये तुम अपनी आलोक-भुजा बरसा कर दिन का पानी
और तुम्हारी ग्रहण-भुजा की श्याम अंगुलियाँ
पृथ्वी की सारस-ग्रीवा पर फौलादी बन बैठ गयी है ।
यूनानी मुनि प्लेटो की मुद्रा में बैठे समय-सनातन !
घूम रही मेरी धरती में आँख गड़ाये देख रहे क्या ?
बिछा हुआ है देव तुम्हारी प्रलय-सृजन की आँखों का आकाश हमारे
देशान्तर औ अक्षांशों के इन लम्बे बाँसों पर ।
सविता, वरुण जहाँ छह-छह माहों तक अतिथि बने बैठे रहते हैं
उस प्रदेश का मैं एस्कीमो
मेरी बाहों में बर्फ़ भरी
मैं सदा खींचता आया यह हड्डी की गाड़ी असुर बर्फ़ के सीने पर ।
मुझको मेरा टुण्ड्रा प्रिय है ।
इन बर्फ़-जंगलों में कोई भी पेड़ नहीं
जिसकी छाया छूने से ठंडा मन होवे तिमिरमान ।
दूर आर्कटिक के खेतों में
मछली की खेती होती है ।
मेरी पत्नी बैठी होगी बर्फ़-गुफ़ा में आग जलाये
श्वेत रीछ की आशा में ही माँस-गंध साकर हो गयी होगी ।

मुझको उसकी आँखें प्रिय हैं ।

जीवन की बर्फीली निर्जता में जैसे उग आये हँसमुख हरियाली ।

छह महीने तक जम जाता है देव, हमारे गगन-खेत में जल किरनों का जाने किन स्लेजों पर चढ़कर अन्धकार आता ही रहता ।

लगता जैसे

सूर्या को ही ब्याह दिया दिन ने अपने प्रिय मित्र वरुण से ।

विदा हो गयी कन्या ।

रिक्त हो गये सब दिग्पालों के अन्न-भाण्ड वे ।

सुनसान पड़ा है नभ का मंडप

जिसमें लग्न-यज्ञ का धूम घिर रहा गाढ़ा होकर ।

समय देवता !

उस नीचे के गर्म देश में उतर चलो अब

कहीं न जम जाये संवत्-रथ, वर्ष-अश्व औ' नील रेशमी क्षण की बल्गा ।

यह नीले सूरज की धरती नील-कमल सी शुभदा होवे

रितु के बर्फ-फूल चमेली से मंगल हों ।

होते हैं प्रारंभ यहाँ से मनुज-पदों के रक्त-चिह्न

जो किसी सदी में कभी चले थे अग्नि-भूख की प्यास मिटाने

समय देवता ! मनुज निष्क्रमण की है यह प्राचीन-कथा ।

किन्तु सामने आ पहुँची है कर्म-भूमि अब यह बोल्गा की

यह यौवन की भूमि सोवियत

जहाँ मनुज की, उसके श्रम की होती पूजा

पूँजी औ' साम्राज्यवाद की तोड़ बेड़ियाँ

हाथों में नव जीवन की उल्काएँ लेकर मनुज खड़ा है कुतुब सरीखा ।

उसके चलने में लोहा है ।

कौन रोक सकता है मानव को चलने से

जिसके संग संग ही आदि काल से इन्द्र चल रहा

मनुज चल सके इसीलिए तो अन्धकार में सूर्य चल रहा ।

जहाँ गया मनु-पुत्र नदी ने जल पहुँचाया

रत्नभरा धरिणी ने सौ-सौ हीरों से लादा ।

सबसे पहले इसी भूमि श्रम की जय-जय कार हुई है

एक पुरुष लेनिन की वाणी

शतकंठी हुंकार हुई है ।

धीमे बोलो समय-देवता ! उसी पुरुष की यह समाधि है

अभी अभी जो कर्म-निरत था

अब आँखें आकाश मींच कर श्रम के सपने देख रही हैं ।

सदा मेघ आशीष लिये आये बिजली के रथ पर

रितुओं के रंगों के चामर स्वर्ग रचे इस भू पर ।

वह जो पीली भूमि दिख रही, देव ! वही है पीत सूर्य की पीली वसुधा जिसका होता कहवा मीठा ।

श्रमण चीन का पीला चोवर अल्ताई पर बिछा हुआ है ।

वे अफ्रीम के खेत उदुम्बर रंगों में डूबे सोये हैं ।

मोरपंख सी सजी रमणियाँ

तितली से रंगीन, शरद्-मेघों से हल्के उनके पंखे

यात्रा का श्रम-ताप हरेंगे ।

सीक्यांग नदी मीठे जल से है भरी हुई

ये चीड़-पेड़ की नौकाएँ सन्ध्या-विहार में अभी देव को डुबा सकेंगी ।

किन्तु आज तो चीन देश की वसुधा माता झुलसी हुई मृतप्राय है ।

वे विदेश-पूँजी की कीलें जो छाती में ठुकी हुई थीं

तीस साल के बाद आज वे उखड़ रही हैं ।

मेरी चीनी माता की आँखों में कोई भाव नहीं है ।

राग-प्रेम कुछ नहीं बचा है

केवल नयन-गगन में भूख-प्यास की चीलें मँडराती हैं ।

समय देवता ! बम के गोलों से यह धरती बाँझ हुई है

चीन देश के नगर-ग्राम घाटी-जंगल में

प्रगतिशील कविता के!मील-पत्थर / १५७

भरा हुआ धूँआ ही धूँआ
 गोबी की मंगोल रेत पर युद्ध-लाश दुर्गंध दे रही ।
 पेकिंग की चिकनी सड़कों पर पिछला जीवन मरा पड़ा है
 नवजीवन के हाथों में गुस्से की मुट्टी बँधी हुई है
 पेशानी पर किसी आक्रमण की चिन्ता है
 दौड़-दौड़ कर चरण देश के द्वार बन्द करने में रत हैं
 आज वदियाँ तीस वर्ष के बाद उतरती
 लगातार बारूद उगलते बन्दूकें भी हाँफ रही हैं ।
 पिछली सारी फ़सलों के वे महल जल गये
 उन फ़सलों के हरे गलों में टंगे हुए तावीज-गुलामी झूल रहे हैं ।
 जाओ कालिदास के बादल, चीनी घरती बुला रही है
 जाओ हे सतरंगी सूरज चीन देश में भोर हुई है ।

दक्षिण दिशि में देव ! देखते हैं वह घरती की सिफ़ुइन सी लम्बी रेखा
 राजनीति की फ़सल सरीखी खड़ी हुई दीवाल चीन की
 रुक जायें इतिहासों की जिससे सेनायें ।
 मनुज बाँटना चाहा ऊँचे बुर्ज बनाकर मिचो आँख के सम्राटों ने ।
 चीन देश की बसुष्पा अपने स्तन से दूध पिलाती जिसको,
 ज्वालामुखि मस्तक है जिसका
 दूर छिपकली सा वह छोटा टापू है जापान देश का
 जो कि मर चुका एटम बम से ।
 डूब गयी बूटों की टापें, सिसक रहा कोढ़ी सा जीवन
 विज्ञान धुएँ के अजगर सा है लील रहा सब रंग रेशमी मनु-श्रद्धा का ।
 हिरोशिमा में मनुज मर गया ।
 वही मनुज जिसके सिर पर यह गगन मुकुट है
 अन्धकार सूरज-मशाल ले किरनों का केसर देने को साथ चल रहा
 और जिसे वह दिन की चिड़िया
 गगन-आम पर दिनभर बैठी घूप सुनाती

वह सृष्टि-श्री मनुज आज विज्ञान-कमल में भरा पड़ा है ।
 दौड़ रही हैं गन्धक और फासफोरस की पीली लपटें
 जिनमें उस जापान देश का सदियों का संगीत जल गया ।
 झूलसी हुई पलक नारी की, मेघ-भरी वे भावहीन जापानी आँखें
 शिशु के हाथों में हड्डी की गुड़िया
 दूर पैसिफ़िक-हरीझील में देव ! हँस रहे वे घरती के द्वीप कमल हैं ।

समय देवता ! यह तिब्बत है
 यहाँ मनुज लामा होता है
 चावस ओर घान, घरती की यह बर्फीली छत है सोयी ।
 किन्तु आज नव क्रान्ति बन्द इसके दरवाजों पर आवाज़ लगाती ।
 यह सम्मुख घरती का पति हिमिगिरि आ पहुँचा ।
 सबसे पहले किरन इसी से लग्न रचाती ।
 अपनी गायें छोड़ घरा पर सूरज इससे गोधूली तक बातें करता ।
 याक बैल पर बर्फ़ ओढ़कर हिमगिरि को अच्छा लगता है
 ब्रह्म देश तक चलते जाना ।
 दोपहरी में मानसरोवर झील किनारे हंसों को नहलाते इसको देख सकोगे ।
 दूर द्रोणियाँ मुनि-पत्नी सी देवदार के केश सुनहले सुखा रही हैं ।
 यह केसर सूरज की घरती भरत-भूमि
 इस स्वर्ण-धूप में मन्त्रपाठ सी करती लगती
 वे सन्थाली गीत असम के जंगल गाते
 बंगदेश की वंशी को वह अंडमान सुनता आया है ।
 गोदावरी का गीत उठ रहा
 ओर त्रिवेन्द्रम के कूलों पर खिल खिल पड़ती है धीवर की वंशी ।
 बिन्ध्या के घर बादल आये, रेवा गाती सोहर
 राजपूतनी ऊँटों को घुँघरू पहना कर
 रेत-बनों में हरी दूब सी चमकी पड़ती ।
 अमराई में बौर आ गये, लाज आ गई

मेरे उस जलते बिहार को ताड़ों ने हँस छाया दे दी ।
 उज्जयिनी को खोजा करते मेघदूत सन्देश-कलश ले ।
 समय देवता !
 वही अज्ञता जिसकी पत्थर की पलकों में अभी तलक भी
 एक आँख में भोग, एक में मुक्तियोग के सपने हँसते ।
 यह इमली का देश, यहाँ कावेरी को लहर चूड़ियाँ सिन्धु पिन्हाता ।
 किन्तु आज तो शस्य श्यामला इस धरती की ।
 फसल जल रही, मनुज मर रहा ।
 कलकत्ते के फुटपाथों पर मनुज खून में लथपथ हुआ
 अपनी सारी संस्कृतियों से ऊब ऊब कर
 आसमान का गट्टर बाँधे चला आ रहा
 शुनुरमुर्ग की टाँगों जैसा नंगा-नंगा
 धर्म-घृणा की ज्वाला में जल-धुन कर
 आज मात्र शरणाथि बन गया ।
 लगी हुई है आग आज आसाम-वनों में
 सदियों से जो बन्द पड़े हिम के दरवाजे
 नयी हवा के भूकम्पों में काँप रहे हैं, टूट रहे हैं ।

पैगोडा से भरी भूमि यह ब्रह्म देश है
 सीप सरीखी आँखों वाली ब्रह्म-युवतियाँ
 अपने मनु के विश्वासों का दीप संजोये इरावती के साथ-साथ चलती हैं ।
 हिन्द चीन औ ब्रह्म देश में घुर्जाँ उठ रहा
 सागौन-जंगलों में जीवन की आग लगी ।
 नवजीवन के हाथों में विश्वास खंग है
 और अंधेरे नीरो का गिर रहा मुक़ुट है ।

सिन्धुराज यह महा पैसेफ़्रिक
 ध्रुव से ध्रुव तक नील बिछे हैं, गगन मित्र है केवल इनका ।

डमरू जैसा देश दिख रहा अमरीका का
 कोलम्बस के पोत लगे ये इसके तट पर, उपनिवेश औ' शोषण के हित ।
 गगन-विद्युम्बित इन महलों को मनुज नीब है, पैसे का जिनमें निवास है
 एटम औ' हाइड्रोजन बम हैं नभगामी महलों के कर में
 चाह रहे जो सृष्टि-धरा को केवल हिरोशिमा कर देना ।
 इसने सोने की ईंटों से चाहा ऊँचे महल बनाना
 किन्तु बन गये आज दैत्य वे, खड़े हुए हुक्कार भर रहे
 जिनकी अन्धकार की लम्बी परछाईं से
 अतलान्तिक औ' महा पैसेफ़्रिक काँप रहे हैं ।
 व्यर्थ बह गया मनुज रक्त का अथक परिश्रम
 कुहरे में बन्दी हैं किरनें और रात के पर्वत दुर्गम
 मनुज-बाँसुरी पर बजती है दानव के लोहे की सरगम ।
 धन्य-धान का वसुधा-यौवन लोह-पटरियों की कीलों से बँधा हुआ है ।

अतलान्तिक में पोत बहुत धीमे चलते हैं
 इसका जल सोता रहता है
 वह देखो उस अन्धकार की कुहर-बाँह में नौद भरा जल साँस ले रहा ।
 यह नीले सूरज की धरती मेरा योरप
 आसमान का संजय जिसके युद्धों का इतिहास कह रहा ।
 यह धरती के मस्तक जैसा शेक्सपियर का देश आ गया
 जिसकी भाषा की बाँहों में धरा बँधी है ।
 सेक्सन संस्कृति के सदनों पर
 रात बहुत ठंडी होकर पिछले प्रहरों में स्वयं नौद से भर जाती जब
 उतरा करते क्रिसमस-बच्चे डर कर दुष्ट तिमिर-चाचा से
 ये स्काटी मानसून-चाटियाँ हँसतीं धरती के मंगल सी ।
 नीचा मुख पर भेड़ें चरतीं
 ऊँचा मुख कर देखा करता स्काटी ग्वाला कृपाशील उस नील गगन को
 जो उसके घर पर छाया है

पीछे छूट गयीं पर्वत की घनी श्रेणियाँ, सम्मुख पेनाइन पठार हैं
वस्त्र-नगर मैनचेस्टर की दिख रही चिमनियाँ
जहाँ बन रहे सन्दल रंगों वाले रेशम वस्त्र सजीले,
देश देश की परिधानित होंगी कन्याएँ ।

उतर चलो, नीचे बरमिषम
काला गगन, हवा साँवली, जहरीले धूएँ के बादल
भद्दी मोटी लालटेन ले घूम रहे गोदामों में ये मोटे बार्डर
जाँच रहे रेलों के पहिये हथौड़ियों से घन-घन कर के
मोटे होठों में है चूफ्ट जन रहा ।

आसमान की छाती में इंजन का सारा शोर भर रहा ।
चमक रही सिग्नल-खंभों पर
लाल-हरी लाइटें राक्षस की आँखों सी ।

लोहे के पाताल नगर में मानव जाने कहाँ खो गया ।
कुछ हल्के से दीख रहे हैं नीले-ठण्डे पार्लमेन्ट के भवन
कि जिनमें

चमड़े की जिल्दों में बन्दी सदियों का इतिहास खून से लथपथ, घायल
सिसक रहा है ।

देव ! फ्रान्स के लिये पोत के लंगर खुलते
कोमल लहरें विनयशील हो हँस-हँस खिल-खिल पोत बढ़ातीं ।
अंगूरों का देश आ गया

इस धरती से कण कण तक को ड्यूकों ने मदिरा से सींचा ।
किसी फ्रेंच युवती सा पैरिस

चमकीली किरनों का गाउन पहने सबसे पूछ रहा है

कल की बासी छाया मेरे कुन्तल में तो शेष नहीं है ?

दूर कहीं यूक्लिप्टिस के पत्तों की गोरी छायाओं में से छन-छन कर

चली आ रही नार्मेडी के उस शेडो की नृत्य-गर्तें वे

सीन नदी की लहर-कमर में हाथ डाल कर जिन पर नाच रहा है पैरिस ।

इस विलास में डूबे पैरिस के रेशम-पदों के पीछे
उच्च वर्ग का स्वार्थ मन्त्रणा करने में रत ।

फ्रान्स सदा युवती का जीवन आज तलक जीता आया है ।

एक शराबी के शरीर सा फ्रान्स बचा है

जिसको बस बातों की आदत मात्र रह गयी ।

किन्तु अभी नवजोवन में धरती की सौंधी गन्ध आ रही

स्वस्थ नसों में सीन नदी का मीठा जल गुंजाय मान है ।

अंगूरों से ज्यादा मीठा वह मिट्टी का फूल

जो कि अब धरती माता उगा रही है ।

गगन-गड़रिया अपने कुहरे-फ्लैटहेट में जिसे खोंस कर
बैठा हुआ आल्प्स पर्वत पर अपनी भेड़ें चरा रहा है ।

स्विटजर लैंड का स्वर्ग दिख रहा

शीलों के जो नील-कमल के सपनों में ही डूबा रहता ।

नारसीसस यह आल्प्स-बर्फ की बाँह-घाटियों में शीलों के गीत गा रहा ।

हरी शील में पीत किरन-चिड़ियाँ जब पानी पीने आतीं

तब कतार में लगे सनोवर-फूलों की रंगीन घाटियाँ

सान्ध्य गगन के नील-चर्च में उन्हें बुलातीं ।

मोरपंख से उन चिड़ियों के हल्के डैने

हेलेन सी डैन्यूब-किनारे, गाउन जैसे बिछ जाते हैं ।

नाइटिंगल बैठी पाइन पर

किसी कीट्स की आशा सी ही अपने छोटे रंग-कंठ के माउथ-आरगन
छेड़ रही है ।

रंग-घाटियों की वह सरगम

नयी बहू की श्वेत स्कर्ट सी हिम पर बिछने-बिछने को है

और रात की नीली रेशम वाले पर्दे

आल्प्स पर्वतों के महलों पर जब गिर जाते

अन्धकार के नील-वनों में लार्क-कंठ तब डूबा-डूबा उठने लगता ।

तम का बैरी तारों की वे मोमबत्तियाँ जला कहीं फिर चल देता है ।
 केवल पीले बालों वाली सन्ध्या का वह गगन-पियानो
 बहुत रात तक बजता रहता ।
 और मुझे लगने लगती तब
 मेरी यह योरप की धरती हरी झील में नील-फूल सी ।
 यह मानव का ज्वालामुखि जर्मन प्रदेश है
 राइन ने कविता दी इसको,
 युद्ध बनो डैन्यूब-तलहटी
 राइन के जलकंठों में गेटे ने गाया
 और हिटलरी फ़्रीजी बूटों ने कुचला डैन्यूब-सहर को ।
 संगीनों से कभी नहीं गेहूँ उगता है ।
 कलपुर्जा के खेतों में बस बम की फ़सल हुआ करती है ।
 खाकी बर्दों का युग मेरा
 मेरे इस जर्मन-प्रदेश में घर का कोई नाम नहीं है
 बनीं हुई बैरक ही बैरक
 वसुन्धरा से घरा बना दी गयी आज है फ़्रीजी नक्शा ।
 मनुज नहीं केडेट बनता है ।
 यह बर्लिन का शहर आज नाज़ी-पागल सा
 युद्ध-चुरट पी चुका स्वयं के कपड़ों में ही आग लगा कर ।
 जल्दी बर्दियाँ घुआँघार फ़्रीजी नक्शों में आग लग गयी ।
 न्यूरेम्बर्ग से गुलेटिनों की आती रही कई आवाज़ें ।
 अब तो मेरे इस प्रदेश को कहना होगा बूचड़ खाना ।
 जले खेत हैं, वृद्धा सी हो गयी बालियाँ
 जिनमें नहीं एक भी दाना ।
 अपने सिर पर आल्प्स-मुकुट धर पोप रोम में राज कर रहा ।
 इटली इस भूमध्य सिन्धु में नहा रहा है
 समय देवता !

मेरी धरती अगर कहीं मीठा गाती है तो वह वेनिस का ही स्वर है
 द्वीपों का यह नगर मुझे सबसे प्रिय लगता ।
 नील-नयन वाले यौवन की मधुर युवतियाँ
 रोमन सुख के मोर-पंख बिनती रहती हैं ।
 जलदेवों की कृपा सदा इस पर छायी है
 पीटर की वे चर्च-घंटियाँ बजते-बजते कथा बन गयीं
 धार्मिक घंटों के ये स्वर सम्राट रहे थे
 उनके उन जलयानों पर वे रोमन केतन
 विश्व-विजय की इच्छाओं में लहराते थे
 किन्तु रोम तो आज तलक जलता ही आया
 मरा पड़ा है एल्बा बनकर मूक समाधी
 नेपल्स-रोम के राजाओं की तरह विलासी—
 बैठा अपने ज्वालामुखि पर टिरेरियन को घूर रहा है ।
 नील गगन अपनी परछाईं आज देखने
 उतरा बैठा सिसली के उस लघु टापू पर
 और सेकता जाता अपने शीत परों को गरम धूप में ।
 भूमध्य सिन्धु में इतिहासों का जल चमकीला ।
 कितना वृद्ध सिन्धु यह मेरा, युद्धों से घायल लथपथ सा ।
 इसीलिये तट के अधरों पर आतप-लाली ।

नील नदी की लड़की मिला-भूमि आ गयी ।
 पिता नील का यज्ञ प्रदेश है
 जिसने चल कर मृत्यु-रेत पर हरे चरण से पुष्पवती धरती को कर दी ।
 बुला रही जो निज खजूर बाँहों को ऊँचे उठा उठा कर
 थके ऊँट, प्यासे पुत्रों को ।
 पानी पीकर रेत रुई का फूल बन गयी ।
 ताड़-खजूरों के इन चिकने पत्तों की पूजा करता हूँ, समय देवता !
 बचा रहे मेरे मानव को आँधी की रेतीली साँसों के डसने से ।

मेरे पूर्वज पिरामिडों पर उतर रहा है
दोपहरी का दैत्य भयानक अंगारों का लाल पुंज ले ।
चाह रहा जो ममी चुरा कर ले जाना
वह दुष्ट सहारा भेजा करता ड्रेगन अपने युगों-युगों से ।
रेत पर्वतों को हम छोड़ चुके हैं समय देवता !
रीछ सरीखा खड़ा हुआ है यह काँगो का काला जंगल ।
अन्धकार इसका स्वामी है ।
पेड़ों के नीचे की यह घरती अब तक क्वारी है
पुरुष सूर्य की छाया से भी बची हुई है ।
नदियाँ डरते डरते वन को जल दे जातीं
जैसे सारा अन्धकार इस पृथ्वी पर का
काँगो के जंगल में आकर हाँफ रहा है ।
आदि जीव के वंशज अब भी किसी गुफा में अन्धकार से बातें करते ।
काँगों के इन तम-महलों की गुराहट को दूर खड़ा वह मेडागास्टर
सुनता रहता
इस दक्षिण के अफ्रीका में श्वेत-प्रयाम में युद्ध हो रहा
मनुज-मनुज की घृणा जल रही ।
यह गुडहोप दिखाई देता
जहाँ कभी वास्कोडिगामा भूला भटका आन लगा था ।
प्रकृति दत्त अफ्रीका—जेन्ना
अतलान्तिक औ' हिन्द महासागर में बैठा हाँफ रहा है ।

श्वेत-सूर्य की घरती यह आस्ट्रेलिया है ।
यूविलिटिस के गोरे जंगल श्वेत-हँसी में डूबे रहते ।
जिनमें मेरी अभी अभी संस्कृति फेली है
समय देवता ! कंगारू का यह प्रदेश है ।
गेहूँ के सोने के जल पर केरल-सी की हवा तैरती ।
घोड़े की छाती तक ऊँची स्वर्ण-बालियाँ

श्वेत सूर्य से बातें करतीं ।
मीलों लम्बे चरगाहों में ऊन लपेटे भेड़ों का दल चला आ रहा ।
क्वीन्सलेण्ड की नसों सरीखी इन नदियों में ।
जल का यौवन गंधमान हो बहता आया ।
अब पृथ्वी पर साँझ हो रही
मीन खड़ा यह सिडनी बन्दर देख रहा इस पिता सिन्धु को ।

समय देवता !
ऐसे समय तुम्हें मेरी पृथ्वी का परिचय प्राप्त हुआ है
जब कि युद्ध की चीलों के मुख से हड्डी की गंध आ रही
युद्धों के दरों में मानव लुटा हुआ सा आज एक मैदान चाहता
और चाहता देश-देश की अपनी
कटी हुई नदियों को जोड़ खेत में पानी देना ।
धूएँ चिड़ियाँ घरती का धान खा रहीं ।
पिछले सारे सूर्यों ने मेरे खेतों में
अपनी किरने बोककर जीवनदान दिया था ।
चाँदी के चंदा ने पूनम-दूध पिनाकर
मेरे जमुन-अंगूरों को रसवान बनाया ।
आओ रितुपति चन्द्र ! सूर्य ! तुम
अपनी धूप-चाँदनी के सौ-सौ चीवर फैलाते
मनुज-घाव पर चैत-शरद की चाँदनियों की रेशम-पलकें हवा कर सकें
घरती नीले तारों का परिवार बन सके
इसीलिए खेतों में सन्ध्या केसर बरसे ।
ज्वारों के सिंहासन पर तुम बैठे हुए महासिन्धुओ !
बहो ध्रुवों तक, चलो तटों तक
अपने शत उपहारों से मानव को लादो ।
नये मनुज के हाथों में श्रम की रेखाएँ आल्प्स रचेगा नये रूप में
राइन-बोल्गा-गंगा की इस घरती पर बह

आज नये जलछन्द लिखेगा ।
 उसके भ्रम के नवल क्षितिज की ओर दौड़ते
 सूरज-घोड़े आसनों की उत्काएँ ले ।
 समय देवता ! आज विदा लो
 किन्तु तुम्हारे रेशम के इस चमक वस्त्र में
 मिट्टी का विश्वास बाँध कर भेज रहा हूँ --
 मेरी धरती पुष्पवती है
 और मनुज की पेशानी के चरागाह पर
 दौड़ रही हैं तूफानों की नयी हवाएँ !

उपेन्द्रनाथ 'अशक'

लकड़बग्घे

तुम कहते हो !

अमुक और अमुक और अमुक
 तुमसे क्यों नाराज हैं ?

मैं कहता हूँ !

अमुक और अमुक और अमुक
 मुझसे क्यों नाराज न हों ?

सड़ा मांस, न जाने कब से पड़ा
 दुर्गन्ध में मदहोश है ।

उसे आक्रोश है

कि शेष कोई क्यों जीवित है ?

घड़कता है ?

गुंघा नर्म आटा

नाला है

हर उससे

जो कठिन है

कड़कता है !

हर क्षण टूट पड़ने को उद्यत कगार

चट्टानों का हठ क्या समझे ?

तट की नर्म लिजलिजी रेत

बगूलों का आवेग
 बवंडरों का अमर्ष क्या जाने ?
 हर झकोरे के आगे झुकने वाली लतर
 टूट जाने, पर न झुकने की बात क्या माने ?
 अमुक और अमुक और अमुक...
 मसलहातों ने उनकी सूरतें बिगाड़ दी हैं
 उन्हें इतने मुखोश दे दिये हैं
 कि स्वयं अपना चेहरा
 उनको पराया हो गया है !
 अमुक और अमुक और अमुक...
 उनकी आस्थाओं के फूल मुरझा चुके हैं
 उद्देश्यों की बीधियाँ अंधी गलियाँ बन चुकी हैं
 सपनों के पाँव पंगु हो चुके हैं
 और उनके अन्तर का लावा
 जाने कब का धुँआ बनकर
 सुविधाओं के आसमान में खो चुका है
 वो मर चुके हैं—
 नहीं जानते कि मर चुके हैं !
 कोच और गलीचे
 फिज और कूलर
 खरीद कर महबूब दिखावे को रक्खी
 दूसरों की कला कृतियाँ
 विदेशी दूतावासों की पार्टियाँ
 बी. आई. पी. मुस्कानें
 जिनकी दृष्टि की सीमा हैं
 संघर्ष की मंजिल हैं
 वे अजाने बीहड़ मार्गों की मसरतें क्या पहचानें ?

अमुक और अमुक और अमुक
 जिस दिन मुझ पर प्रसन्न होंगे
 मैं समझ लूँगा—
 लकड़बग्घे जंगल में व्यर्थ नहीं चीख रहे
 मैं मरणोन्मुख हूँ !

सत्यान्वेषी

मैं इस जन-संकुल वीराने में अकेला खड़ा हूँ ।
 और मैं सोचता था—मेरे पुरजन, परिजन, मित्र, शत्रु—एक दुनिया
 मेरे पीछे खड़ी हो जायगी
 और एक दुर्वार जयकार
 किसी आदिम योद्धा के तीर से छूटी अप्रतिहत शक्ति सा
 आने वाली सदियों के अंधेरों को भेदता चला जायगा
 और लोबान और चन्दन से भी प्रियकर
 कोई खुशबू
 दशों दिशाओं में व्याप जायगी
 मैं सोचा करता था—जब मैं बच्चा था ।

जब मैं बच्चा था
 मुझे वह खुशबू बहुत भाती थी
 अचानक इतिहास के किसी जर्जर पन्ने से आने लगती थी
 किसी लोककथा के प्राचीन नायक की वाणी से महक उठती थी
 हमारी पाठशाला के बड़े मेहराबदार दरवाजे से झरा करती थी—
 (जिस पर मोटे, अनगढ़ अक्षरों में लिखा था—सत्मेव जयते ।)
 और उस बड़ी-बड़ी नुकीली मूँछों वाले, रोबीले चेहरे से

(जो मेरे पिता का था) शराब की बू को पीछे धकेलती
सीली कोठरी में व्याप जाती थी
और उस बगिया में

जहाँ एक छोटे से बालक ने महज जिज्ञासा बश—

अपने पिता के प्यारे पेड़ काट दिये थे और

पूछे जाने पर निडर अपनी कुल्हाड़ी दिखा दी थी

और उस कमजोर बीमार औरत के होठों से

जिसके चेहरे पर सदियाँ चुपचाप सलवटें बन पसर गयी थीं

और संवत्सर सियाह घन्वे बन कर फैल गये थे ।

(जो मेरी माँ थी और जो बार-बार मुझे उस बालक की याद दिलाती थी ।)

वह खुशबू । जब मैं बच्चा था । और स्कूल में पढ़ता था ।

मैं सोचता था—

मैं बायें हाथ में मशाल लूँगा

और दायें में बिजली की जीभ-सा खड़ग

और मैं अँधरों को काटता चला जाऊँगा ।

काटता चला जाऊँगा उन सारे आवरणों को

जो तुम्हारा चेहरा छिपाये हुए हैं ।

एक जलती मशाल । एक चमकता खड़ग

एक व्यापती गंध और तुम्हारा निरावरण मुख—

जब मैं जवान था ।

जब मैं जवान था—

उत्साह मेरे पहलुओं में अपनी एड़ियाँ गढ़ाये

मुझे सरपट दौड़ाता था ।

मैं ही गतिवान तुरंग था

मैं ही ज़ीन पर तना बैठा सवार

मैं ही जलती मशाल था

मैं ही काटता खड़ग

और मैं नहीं जानता, कब मेरे बालों पर सफ़ेदी उतर आयी
और मैं प्रौढ़ हो गया ।

मैं प्रौढ़ हो गया

पर मेरे अन्तर की आग वैसे ही प्रज्वलित रही

मैं मशाल को वैसे ही धामे रहा

धामे रहा उस तीक्ष्ण खड़ग को

और महसूस करता रहा अपनी पसलियों में उत्साह की एड़ियाँ

और वे जो तुम्हारे नाम की कस्में खाते थे

मुझे छोड़ गये ।

और वे जो अपने को तुम्हारे अनुगत बताते थे

मुझे छोड़ गये ।

और वे जो दूसरों को सुगंधि लुटाते थे

मुझे छोड़ गये ।

और वे जो तुम्हारे मुखोष्ण चढ़ाये असली चेहरे छिपाते थे

मुझे छोड़ गये ।

कि उनमें तुम्हारे साक्षात्कार का सामर्थ्य नहीं था

कि उनके पैरों में सरपट भागने की शक्ति नहीं थी

कि उत्साह ने उनके पहलुओं में एड़ लगाना छोड़ दिया था

कि उनके चेहरे बेनक्राब हो गये थे ।

और आज मैं इस जनाक्रान्त मरु में अकेला खड़ा हूँ

मेरे चेहरे पर बेगिनती झुर्रियाँ हैं

मेरी आँखों की ज्योति मन्द हो रही है

और मेरे सामने तुम्हारा निरावरण मुख है—

जिस पर कभी बड़ी-बड़ी मूँछे उग आती हैं

और कभी सदियाँ सलवटें बन कर पसर जाती हैं ।

और एक गंध है, जो सभी ओर से सिमट कर मुझ में व्याप रही है ।

और मैं इस जन-संकुल मरु में अकेला खड़ा हूँ ।●

वीरेन्द्र कुमार जैन

सावधान, गलतफ़हमी में न रह जाना

सावधान, गलतफ़हमी में न रह जाना !

हम सिर्फ़ धरातल पर नहीं हैं :

हम सिर्फ़ तुम्हारी पार्लामेंट की फर्श पर नहीं हैं ।

(तुम्हारी आँखें जितना देख पाती हैं,

हम सिर्फ़ उतने ही नहीं हैं !)

ये बोट ओ' विधान नहीं हैं हमारे विधाता ;

हम दो-दूक परमाणु के पार की

आगामी दुनिया के अनपहचाने शास्ता ।

अनपहूँचे ग्रह-नक्षत्रों की प्लेटों में

सजा हुआ है हमारी कल की सुबह का नाशता !

जिनेवा के शिखर-सम्मेलन नहीं

हमारी गति-विधियों के निर्णायक ।

सावधान, तुम्हारे आणविक शस्त्रों और मिसाइलों में

पल रहे सत्यानाश—

छू नहीं सकते हैं उस नूतन दुनियाँ को,

जो हमारे सीनों की आग में ढल रही है,

जो हमारे बेरोक बहते खून में उबल रही है,

जो हमारी पुतली की रोशनी में उजल रही है !

सावधान, गलतफ़हमी में न रह जाना !

हम सिर्फ़ तुम्हारी इस सिमटती भूगोल तक

सीमित नहीं है—

कि जिसकी दूटती सरहदों वाली शतरंजी पर

खेल रहे हो तुम,

अपने सर्वनाशी स्वार्थों और अहंकारों की

आत्मघातक बाज़ियाँ !

हम सिर्फ़ रूस, चीन, पूर्वी जर्मनी, फिनलेण्ड

पोलेण्ड के लाल झंडों तक महेदूद नहीं हैं ।

ये स्तालिन, माओ, ख्रूश्चेव

हमारी नियति के आखिरी ध्रुव-पुरुष नहीं हैं !

कृष्ण, बुद्ध, महावीर, मोहम्मद, ईसा, नाज़रीन,

लिकन, टॉम पेन, मार्क्स, लेनिन,

अरविन्द, रवीन्द्र, आइन्स्टीन की चिर प्रगतिमान, बहिमान,

चिरन्तन विद्रोहिनी परम्परा के हम हैं शोलागर निशान ।

हम बगावत की आग की वे अविच्छेद्य नदियाँ हैं,

जो हर देश-काल की भूमिगत सरहदें तोड़ कर

अनन्तनी भूमा के आरपार बहती हैं ।

कि जिनकी हर लहर के भंग में विलियम ब्लैक,

वाल्ड द्विटमैन, रोमाँ रोलाँ ओ' हावर्ड फास्ट की

अमृता भारती गाती है !

कि जो हर पल, हर अगले कदम पर

शून्य में से सत्ता का निर्माण करती चलती है ।

सावधान, गलतफ़हमी में न रह जाना !

हम सिर्फ़ धरातल पर नहीं हैं :

हम सिर्फ़ तुम्हारी पार्लामेंट की फर्श पर नहीं हैं ।

हम सिर्फ़ हड़तालों, जुलूसों, चुनावों तक सीमित नहीं हैं—

जिन्हें तुम्हारी सत्ता की संगीनों और गोलियाँ

कुचल सकती हैं :

जिन्हें तुम्हारे चाँदी-सोने के हाथी रौंद सकते हैं !

हम वह शै हैं, जो घीड़न से कांपती

घरती के गर्भ में आग के तीर से सनसना रही है।

हम समुद्रों में, हवाओं में, आसमानों पर,

ईश्वर की सूक्ष्मतम लहर में अनिर्वार छाये हुए हैं

सावधान, शोषक सत्ता-स्वामियो, युद्ध-स्वामियो

इन्सान की आत्मा के सोदागरो,

समेटो ये नक्शे अपने, समेटो ये हर्दें अपनी,

समेटो ये दुकानें अपनी।

कि लो, हर दिशा की कुंवारी मरियम का

गर्भ कांप उठ्ठा है—

कि घरती, आसमान, हवाओं और समुद्रों के

घायल सीनों को चीर कर,

हर निपोडित मासूस आत्मा के आँसू से—

अब हम किसी क्षण एक विभ्राट विप्लवी

ज्योति की उल्का-से टूट पड़ने को हैं—

जो एक ही बार में तुम्हारी सत्ता के

सिंहासन उलट देगी :

जो एक ही बार में दुनिया का चेहरा पलट देगी !

सावधान, गलतफ़हमी में न रह जाना !

हम सिर्फ़ घरातल पर नहीं हैं।

हम सिर्फ़ तुम्हारी पार्लामेण्ट की फ़र्श पर नहीं हैं।

हम सिर्फ़ कोई राजनीतिक पार्टी,

या तुम्हारी संसद के विपक्षी दल नहीं हैं।

हम स्वयम् घरती की आखिरी इच्छा हैं :

हम स्वयम् महाकाल का अनिर्वार आगामी चरण हैं। ●

रामदरश मिश्र

होने और न होने के बीच

मैं हूँ—

वह नहीं जो हूँ

वह, जो मुझे पहना दिया है

कीलें ठोंक ठोंक कर

और यह पहनाया गया 'मैं' भी

किसी दूसरे के शरीर का है

कहीं से ढीला

कहीं से अंगों को कसता हुआ

स्वयं दरकता हुआ

जब रास्तों से निकलता हूँ

भीड़ से गुजरता हूँ

तो यह पहनाया गया 'मैं'

बड़ी शान से फहराता रहता है ध्वजा की तरह

जिस पर लोग

या तो विरोधी दलों की तरह थुकते हैं

या अदब से बिछ जाते हैं

दल के अंधभक्तों की तरह

और 'मैं' के नीचे कुचला हुआ 'मैं'

तड़पता रहता है भीड़ में खोये किसी एकांत के लिए

जिसे वह अपने को दे दे।

मैंने कितना जोर मारा था
 कि फाड़ कर फेंक दूँ इस 'मैं' को
 उनके मुँह पर
 जिन्होंने पहनाकर कीलें ठोक दी हैं
 और भीड़ में से गुजरूँ तो हल्ला करूँ—
 साथियों
 यह 'मैं' मेरा नहीं है
 यह कुछ खिताब बाँटने वाले हाथों द्वारा पहनाया गया है
 लेकिन यह कभी नहीं हो सका
 बार बार सगा
 कि पहनाने वाले हाथों का दबाव
 मेरे खून तक, मेरी आवाजों तक कसा हुआ है

और अब तो लगता है
 कि भीड़ से गुजरने का यह अहसास ही रीत गया है
 सगता है
 कीलें मेरी हड्डियों के रस में भीग गयी हैं

किन्तु अब भी कभी कभी
 जब कोई एकांत
 मेरे होने और न होने के द्वन्द को सुलगा जाता है
 तब कीलें जोर-जोर से चुभने लगती हैं
 पहनाया गया 'मैं'
 दूसरे के मैले वस्त्र की तरह गंधाने लगता है
 और खून उछल उछल कर
 चाहता है उछाल देना कीलों को
 और गला फाड़ फाड़ कर चिल्लाना
 रास्तों पर, गलियों में, बाजारों में

और जब यह नहीं हो पाता
 तो वह अपने को एक पतल और लपेट कर
 लेट जाता है मार खाये बच्चे की तरह
 और ध्वजा की तरह हिलता हुआ 'मैं'
 चल देता है भीड़ की ओर
 जहाँ इस पर लोग
 या तो थूकते हैं
 या जयजयकार उछालते हैं आँखें मूंद कर ।

सांस्कृतिक एकता

यह दिल्ली है
 यहाँ भी रास्ता काट जाती एक बिल्ली है
 यहाँ भी पत्रा देखकर
 जनवादी घोषणाओं की शुष्कवाद होती है
 यहाँ भी बड़े-बड़े सरकारी चौपाल हैं
 जहाँ दिन भर केवल बात होती है
 यहाँ भी खादी के नीचे कोकशास्त्र
 और टेरेलिन के नीचे हनुमान चालीसा होता है
 यहाँ भी शीशे की जगह एक चेहरा
 और चेहरे की जगह एक शीशा होता है ।
 यहाँ भी चौराहे-चौराहे टोटके
 बाँहों में ताबीज पड़े होते हैं
 यहाँ भी नेता की सूरत देखकर
 आदमी भाग खड़े होते हैं
 यहाँ भी कुत्ता कुत्ते पर भूंकता है